* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

मकरी-उद्धार

गो-गोपी-गोपाल

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, मई २०१७ ई० | संख्या ५

पूर्ण संख्या १०८६

'माधुरी मुरली अधर धरें'

माधुरी मुरली अधर धरें।
बैठे मदनगुपाल मनोहर सुंदर कदँब तरैं॥
इत-उत अमित ब्रज-वधू ठाढ़ीं, बिबिध बिनोद करैं।
गाय-मयूर, मधुप रस-माते, नहीं समाधि टरै॥
झाँकी अति बाँकी ब्रज-सुत की, कलुष-कलेस हरै।
बसत नयन-मन नित्य निरंतर, नव-नव रति सँचरै॥

अर्थात् मदनमोहन भगवान् श्रीकृष्ण मनोहर गोपाल-वेशमें एक सुन्दर कदम्बवृक्षके नीचे [रत्नवेदिकायुक्त सुवर्ण-सिंहासनपर] आसीन हैं। उनके अधरोंपर मुरली सुशोभित हो रही है और वे उसे मधुर स्वरमें बजा रहे हैं। उनके इधर-उधर बहुत-सी व्रजवधुएँ खड़ी हैं और अनेक प्रकारके विनोद कर रही हैं। गौएँ, मयूरगण और भ्रमर [मुरली-ध्वनिसे उत्पन्न संगीतरूपी] रसका पानकर मतवाले होकर समाधि-अवस्थामें पहुँच गये हैं और उनकी समाधि किसी प्रकार टूट नहीं रही है। ब्रजराजकुँवरकी यह बाँकी झाँकी पाप और क्लेशको हरनेवाली है। जिसके अन्तःचक्षुओंमें यह नित्य-निरन्तर बसी रहती है, उसके अन्तःकरणमें उन गोपाल कृष्णके प्रति नव-नवायमान प्रेम संचरित होता रहता है। [पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, मई २०१७ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—मैं भगवान्‌की कृपाशक्तिपर विश्वास करके जिस साधन-मार्गपर चल रहा हूँ, मेरे लिये वही प्रशस्त है और मैं उसमें निश्चय ही सफलता प्राप्त करूँगा। ऐसा कभी मत सोचो कि साधन ठीक है या नहीं, अथवा सफलता मिलेगी या नहीं। सन्देह मार्गमें रोक देता है और विश्वास लक्ष्यपर पहुँचा देता है।

विश्वास करो और निश्चय करो—मैं इस बार मानव-शरीर धारण करके जगत्‌में आया ही इसलिये हूँ कि अबकी बार मैं शरीरके बन्धनसे, जो अज्ञानजनित है, छूटकर ही रहूँगा। अज्ञानके कारण ही मैं अनादि कालसे अबतक भटकता रहा। अब नहीं भटकूँगा, नहीं भटकूँगा।

याद रखो—अज्ञानका सर्वथा समूल नाश होना और भगवत्तत्त्वका साक्षात्कार होना एक ही बात है, यह भगवत्तत्त्व-साक्षात्कार ही मानव-जीवनका चरम एवं परम लक्ष्य है, और यह निश्चय करो कि मैं उस भगवत्तत्त्व-साक्षात्कारका सर्वथा अधिकारी होकर ही आया हूँ तथा उसे प्राप्त करके ही रहूँगा।

याद रखो—मेरे इस अधिकारका एकमात्र बल है भगवान्‌की कृपा और वह भगवान्‌की कृपा मुझे अनन्त और असीम रूपमें प्राप्त है। मैं उस कृपासमुद्रमें निमग्न हूँ। इसलिये अब मुझे यह भी सोचना नहीं है कि भगवत्तत्त्वका साक्षात्कार भी मुझे करना है; क्योंकि भगवत्कृपाके अथाह समुद्रमें निमग्न हो जानेके बाद न तो कोई सोच-विचार होता है और न उसकी आवश्यकता ही रहती है।

याद रखो—भगवान्‌की कृपाशक्ति समस्त भागवती शक्तियोंकी स्वामिनी हैं। सारी शक्तियाँ इन्हींकी अनुगता होकर कार्य करती हैं। यह महती कृपाशक्ति जिसको अपना लेती है, वह भगवत्तत्त्व-साक्षात्कार ही क्या भगवान्‌को—समग्ररूपसे—सब प्रकारसे पाकर निहाल हो जाता है।

याद रखो—जहाँतक अपने पुरुषार्थ तथा अपनी पृथक् क्षुद्र शक्तिपर आस्था है तबतक एक तुच्छ अहंकारका तुमपर आधिपत्य है। ऐसे अहंकारके रहते तुम्हारे लिये वस्तुतः भगवान्‌की कृपाशक्तिका कार्य रुका रहता है। कृपाशक्ति चाहती है—पूर्ण निर्भरता, पूर्ण प्रपत्ति और पूर्ण आत्मनिवेदन। अपनेको अपनी सारी शक्तियोंसहित सारी शक्तियोंके उद्‌गम और आकर-स्वरूप भगवान्‌के समर्पण कर दो। अपने समस्त अहंकारको जला दो, गलाकर बहा दो और सर्वतोभावसे कृपा माताका आश्रय ग्रहण करो। फिर देखोगे, कितनी जल्दी और कितनी सुकरता एवं सुन्दरतासे तुम्हारी यह आखिरी जीवनयात्रा सफल होती है।

याद रखो—भगवत्कृपा तुम्हें अपनाने, तुमपर बरसने, तुम्हें अपनी महान् मधुर और शीतल छायाका आश्रय देनेके लिये सदा-सर्वदा तैयार है तथा वह यह भी नहीं देखती कि तुम्हारा पूर्व इतिहास—अबतकका आचरण कैसा है। तुम पुण्यात्मा हो या पापी, तुम सात्त्विक हो या तामस, तुम ब्राह्मण हो या चाण्डाल, तुम देवता हो या दानव, तुम हिन्दू हो या मुसलमान, तुम धनी हो या गरीब और तुम पण्डित हो या मूर्ख—वह तो केवल देखती है तुम्हारे अन्दरका भाव। यदि तुम सचमुच अन्य सारे साधनोंसे हताश-निराश होकर और एक विश्वास-भरोसेके साथ उसकी ओर निहार रहे होगे तो वह उसी क्षण तुम्हें अपना लेगी, तुमपर चारों ओरसे बरस पड़ेगी और तुम्हें अपनी सुखद छायाका आश्रय देकर निश्चिन्त, निर्भय और निष्काम बना देगी। तुम्हारी कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहेगी उस समय; परंतु तुम्हें कामना और उसकी पूर्तिका भी पता नहीं रहेगा। तुम उस समय उस कृपाशक्तिकी पवित्र लहरोंके साथ घुल-मिलकर स्वयं पवित्र-कृतार्थरूप हो जाओगे।

विश्वास करो—भगवान्‌की कृपा तुमपर है ही। वह सदा सभीपर है। सभीको प्राप्त है। तुम विश्वास नहीं करते—मानते नहीं, इसीसे अन्य साधनोंका सहारा खोजते हो और इसीसे उस नित्यप्राप्त जन्मसिद्ध अपने परम धनसे वंचित हो रहे हो!

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

मकरी अप्सराका उद्धार

लंकामें लक्ष्मण और मेघनादके बीच भयंकर युद्ध हो रहा था। जब मेघनादने अपने प्राणोंपर संकट देखा तो उसने ब्रह्माजीकी दी हुई शक्तिका लक्ष्मणपर प्रहार किया। उससे घायल होकर लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मणजीकी चिकित्साके लिये हनुमान्‌जी लंकासे सुषेण वैद्यको सोते हुए ही घरसहित उठा लाये। सुषेणने कहा, 'हिमालयके द्रोणाचल शिखरपर संजीवनी बूटी नामक औषधि है। उसे सुबह होनेके पहले ही ले आना चाहिये। तभी इनके प्राण बच सकते हैं।' वैद्य सुषेणकी बातें सुनकर सबने आशाभरी आँखोंसे हनुमान्‌जीकी ओर देखा। वे तुरन्त ही द्रोणाचल जानेके लिये तैयार हो गये। रावणने सोचा कि किसी प्रकार हनुमान्‌की यात्रामें विघ्न डाला जाय, जिससे वे औषधि लेकर समयसे न लौट सकें। वह कालनेमि राक्षसके पास गया तथा उससे कहा, 'तुम ऐसी माया रचो कि लक्ष्मणके प्राण बचानेके लिये औषधि लेकर हनुमान् समयसे लौट न सकें।' रावणकी बातें सुनकर कालनेमिने कहा, 'नाथ! रामके दूत हनुमान्‌को मायासे मोहित कर पानेमें कोई भी समर्थ नहीं है। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा तो मुझे निश्चित रूपसे मृत्युके मुँहमें जाना होगा।' कालनेमिकी बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हो उठा। उसने कहा 'कालनेमि! यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हें मेरे ही हाथसे मरना होगा।' कालनेमिने सोचा कि जब मरना ही है तो मैं इस दुष्ट पापीके बजाय रामदूत हनुमान्‌के हाथों ही क्यों न मारा जाऊँ? यह सोचकर उसने उनके मार्गमें एक बहुत ही सुन्दर आश्रमका निर्माण किया। स्वयं मुनिका वेश बनाकर उस आश्रममें बैठ गया। हनुमान्‌जी जब उस आश्रमके पास पहुँचे तब उन्हें बड़े जोरोंकी प्यास लगी। वे शीघ्र ही कपटी मुनि कालनेमिके आश्रममें जा पहुँचे। उसको प्रणाम करके कहा, 'मुनिवर! मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी है, यहाँ जल कहाँ मिल सकेगा?'

कपटी कालनेमिने कहा, 'रावण और राममें महान् युद्ध हो रहा है। रामजी जीतेंगे इसमें सन्देह नहीं है। हे भाई! मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ। मुझे ज्ञानदृष्टिका बहुत बड़ा बल है। मेरे इस कमण्डलुमें शीतल जल भरा हुआ है। तुम इसे पीकर प्यास बुझा लो।' हनुमान्‌जीने कहा, 'थोड़े जलसे मेरी प्यास नहीं बुझेगी। आप मुझे कोई जलाशय बता दीजिये।' कालनेमिने उन्हें एक सुन्दर जलाशय दिखाते हुए कहा, 'तुम वहाँ जाकर अपनी प्यास बुझा लो और स्नान भी कर लो। इसके बाद मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।' उसकी बातें सुनकर हनुमान्‌जी शीघ्र ही उस जलाशयके पास पहुँच गये। स्नान करनेके लिये ज्यों ही वे उस जलाशयके भीतर गये, त्यों ही एक मकरीने उनका पैर पकड़ लिया। हनुमान्‌जीने तुरन्त ही उसका मुँह फाड़कर उसे मार डाला। हनुमान्‌जीद्वारा मारे जाते ही वह मकरी दिव्य अप्सराका वेश धारण करके विमानमें बैठकर आकाशमें पहुँच गयी। उसने हनुमान्‌जीसे कहा, 'पवनपुत्र हनुमान्! एक मुनिके शापके कारण मुझे मकरी बनना पड़ा था। हे रामदूत! तुम्हारे दर्शनसे आज मैं पवित्र हो गयी। मुनिका शाप मिट गया। आश्रममें बैठा हुआ यह मुनि कपटी घोर निशाचर है।'

उस अप्सराकी बात सुनकर महाबली हनुमान्‌जी तुरन्त ही उस कपटी मुनि कालनेमिके पास जा पहुँचे और कहा, 'मुनिवर! आप पहले मुझसे गुरुदक्षिणा ले लीजिये। मन्त्र आप मुझे बादमें दीजियेगा।' यह कहकर उसको अपनी पूँछमें लपेट लिया और पटककर मार डाला। मरते समय कालनेमिने अपना असली राक्षसका रूप प्रकट कर दिया। मुखसे राम-राम कहा। इस प्रकार राम-नाम लेनेसे उसका भी उद्धार हो गया।

शिव-तत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गतांक ४ पृ०-सं० ९ से आगे]

'शिव' शब्द नित्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माका वाचक है। यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है। 'शिव' शब्दकी उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातुसे हुई है, जिसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं, उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते हैं अखण्ड आनन्दको। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ आनन्द हुआ। जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्दको ही परम मंगल और परम कल्याण कहते हैं, अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ परम मंगल, परम कल्याण समझना चाहिये। इस आनन्ददाता, परम कल्याणरूप शिवको ही शंकर कहते हैं। 'शं' आनन्दको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है, अतएव जो आनन्द करता है, वही 'शंकर' है। ये सब लक्षण उस नित्य, विज्ञानानन्दघन परम ब्रह्मके ही हैं।

इस प्रकार रहस्य समझकर शिवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे उनकी कृपासे उनका तत्त्व समझमें आ जाता है। जो पुरुष शिव-तत्त्वको जान लेता है, उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। शिव-तत्त्वको हिमालयतनया भगवती पार्वती यथार्थरूपसे जानती थीं, इसीलिये छद्मवेषी स्वयं शिवके बहकानेसे भी वे अपने सिद्धान्तसे तिलमात्र भी नहीं टलीं। उमा-शिवका यह संवाद बहुत ही उपदेशप्रद और रोचक है।

शिवतत्त्वैकनिष्ठ पार्वती शिवप्राप्तिके लिये घोर तप करने लगीं। माता मेनकाने स्नेहकातरा होकर उ (वत्से!) मा (ऐसा तप न करो) कहा, इससे उसका नाम 'उमा' हो गया। उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका 'अपर्णा' नाम पड़ा। उनकी कठोर तपस्याको देख-सुनकर परम आश्चर्यान्वित हो ऋषिगण भी कहने लगे कि 'अहो, इसको धन्य है, इसकी तपस्याके सामने दूसरोंकी तपस्या कुछ भी नहीं है।' पार्वतीकी इस तपस्याको देखनेके लिये एक समय स्वयं भगवान् शिव जटाधारी वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तपोभूमिमें आये और पार्वतीके द्वारा फल-पुष्पादिसे पूजित होकर उसके तपका उद्देश्य शिवसे विवाह करना है, यह जानकर कहने लगे—

'हे देवि! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। मित्रताके नाते मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है। तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका संकल्प सर्वथा अनुचित है। तुम सोनेको छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्यागकर कीचड़ पोतना चाहती हो। हाथी छोड़कर बैलपर मन चलाती हो। गंगाजलका परित्यागकर कुएँका जल पीनेकी इच्छा करती हो। सूर्यका प्रकाश छोड़कर खद्योतको और रेशमी वस्त्र त्यागकर चमड़ा पहनना चाहती हो। तुम्हारा यह कार्य तो देवताओंकी सन्निधिका त्यागकर असुरोंका साथ करनेके समान है। उत्तमोत्तम देवोंको छोड़कर शंकरपर अनुराग करना सर्वथा लोकविरुद्ध है।

जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी, चिताभस्मलेपनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र, भूतपति महादेव! कहाँ तुम्हारे घरके देवतालोग और कहाँ शिवके पार्षद भूत-प्रेत! कहाँ तुम्हारे पिताके घरके बजनेवाले सुन्दर बाजोंकी ध्वनि और कहाँ उस महादेवके डमरू, सिंगी और गाल बजानेकी ध्वनि! न महादेवके माँ-बापका पता है, न जातिका! दरिद्रता इतनी कि पहननेको कपड़ातक नहीं है! दिगम्बर रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाघका चमड़ा ओढ़े रहते हैं! न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है। सदा अकेले रहनेवाले, उत्कट विरागी, मुण्डमालाधारी महादेवके साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी?'

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सह सकीं। वे तमककर बोलीं—'बस, बस, बस रहने दो, मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती। मालूम होता है, तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। तुम किसी धूर्त ब्रह्मचारीके रूपमें यहाँ आये

हो। शिव वस्तुत: निर्गुण हैं, करुणावश ही वे सगुण होते हैं। उन सगुण और निर्गुण—उभयात्मक शिवकी जाति कहाँसे होगी? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका ही क्या परिमाण बाँधा जा सकता है? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतएव उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है? वही अनादि, अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातनदेव हैं। तुम कहते हो, महादेव विद्याहीन हैं। अरे, ये सारी विद्याएँ आयीं कहाँसे हैं? वेद जिनके नि:श्वास हैं, उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो? छि:! छि!! तुम मुझे शिवको छोड़कर किसी अन्य देवताका वरण करनेको कहते हो। अरे, इन देवताओंको जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व प्राप्त ही कहाँसे हुआ? यह उन भोलेनाथकी ही कृपाका तो फल है। इन्द्रादि देवगण तो उनके दरवाजेपर ही स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणोंकी आज्ञाके अन्दर घुसनेका साहस नहीं कर सकते। तुम उन्हें अमंगलवेष कहते हो? अरे, उनका 'शिव'—यह मंगलमय नाम जिनके मुखमें निरन्तर रहता है, उनके दर्शनमात्रसे सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या है? जिस चिताभस्मकी तुम निन्दा करते हो, नृत्यके अन्तमें जब वह उनके अंगोंसे झड़ती है, उस समय देवतागण उसे अपने मस्तकोंपर धारण करनेको लालायित होते हैं। बस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्त्वको बिलकुल नहीं जानते। जो मनुष्य इस प्रकार उनके दुर्गम तत्त्वको बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके संचित किये हुए पुण्य विलीन हो जाते हैं। तुम-जैसे शिवनिन्दकका सत्कार करनेसे भी पाप लगता है। शिवनिन्दकको देखकर भी मनुष्यको सचैल स्नान करना चाहिये, तभी वह शुद्ध होता है। बस, अब मैं यहाँसे जाती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि यह दुष्ट फिरसे शिवकी निन्दा प्रारम्भकर मेरे कानोंको अपवित्र करे। शिवकी निन्दा करनेवालेको तो पाप लगता ही है, उसे सुननेवाला भी पापका भागी होता है।' यह कहकर उमा वहाँसे चल दीं। ज्यों ही वे वहाँसे जाने लगीं, वटुवेषधारी शंकरने उन्हें रोक लिया। वे अधिक देरतक पार्वतीसे छिपे न रह सके, पार्वती जिस रूपका ध्यान करती थीं, उसी रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई, उन्हें साक्षात् शिवके दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, कुछ कालमें शिवने पार्वतीका पाणिग्रहण कर लिया।

जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्याघ्राम्बरधारी, सदाशिव परमात्माको निर्गुण, निराकार एवं सगुण, निराकार समझकर उनकी सगुण, साकार दिव्य मूर्तिकी उपासना करता है, उसीकी उपासना सच्ची और सर्वांगपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही उपासनाकी सर्वांगपूर्णतामें कमी है और उतना ही वह शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ और लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वही जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी, देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है? परंतु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही आशुतोष! उपासना करनेवालोंपर बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्यको जानकर निष्काम-प्रेमभावसे भजनेवालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है? सकामभावसे, अपना मतलब गाँठनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं, उनपर भी आप रीझ जाते हैं, भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते। जरा-सी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद्र उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यंग्यसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। इस विषयमें गोसाईं तुलसीदासजी महाराजकी कल्पना बहुत ही सुन्दर है। वे कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी॥

—ऐसे भोलेनाथ भगवान् शंकरको जो प्रेमसे नहीं भजते, वास्तवमें वे शिवके तत्त्वको नहीं जानते, अतएव उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है। इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय। अतएव प्रिय पाठकगणो! आपलोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है, यदि आपलोग उचित समझें तो नीचे लिखे साधनोंको समझकर यथाशक्ति उन्हें काममें लानेकी चेष्टा करें—

(क) पवित्र और एकान्त स्थानमें गीता अध्याय ६, श्लोक १० से १४ के अनुसार भगवान् शिवकी शरण होकर—

(१) भगवान् शंकरके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा श्रवण करके, मनन करना एवं स्वयं भी सत्-शास्त्रोंको पढ़कर उनका रहस्य समझनेके लिये मनन करना और उनके अनुसार आचरण करनेके लिये प्राण-पर्यन्त कोशिश करना।

(२) भगवान् शिवकी शान्त-मूर्तिका पूजन-वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य करना।

(३) भगवान् शंकरमें अनन्य प्रेम होनेके लिये विनय-भावसे रुदन करते हुए गद्गद वाणीद्वारा स्तुति और प्रार्थना करना।

(४) **'ॐ नमः शिवाय'—**इस मन्त्रका मनके द्वारा या श्वासोंके द्वारा प्रेमभावसे गुप्त जप करना।

(५) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-भक्तिसहित निष्कामभावसे ध्यान करना।

(ख) व्यवहारकालमें—

(१) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ सद्-व्यवहार करना।

(२) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी आज्ञाके अनुसार फलासक्तिको त्यागकर शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, सेवा एवं वर्णाश्रमके अनुसार जीविकाके कर्मोंको करना।

(३) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशको शंकरकी इच्छासे हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान् सदाशिवकी दयाका दर्शन करना।

(४) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, उन शिवके नाम-जपका अभ्यास सदा-सर्वदा करना।

(५) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय कोशिश करते रहना।

उपर्युक्त साधनोंको मनुष्य कटिबद्ध होकर ज्यों-ज्यों करता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके अन्तःकरणकी पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। इसलिये कटिबद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये। इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना सबसे बढ़कर है। अतएव नाना प्रकारके कर्मोंके बाहुल्यके कारण उनके चिन्तनमें एक क्षणकी भी बाधा न आये, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। यदि अनन्य प्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण शास्त्रानुकूल कर्मोंके करनेमें कहीं कमी आती हो तो कोई हर्ज नहीं, किंतु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी चाहिये; क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है, वहाँ भगवान्का चिन्तन (ध्यान) तो निरन्तर होता ही है और उस ध्यानके प्रभावसे पद-पदपर भगवान्की दयाका अनुभव करता हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे समझकर कृतकृत्य हो जाता है, अर्थात् परमपदको प्राप्त हो जाता है। अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। **[समाप्त]**

भला पड़ोसी कौन ?—एक शोध

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

किसीने एक संतसे पूछा—'परमेश्वरकी सबसे बड़ी आज्ञा क्या है ?'

संत बोले—'पहली आज्ञा तो यह है कि तू अपने पूरे मन, प्राण और बुद्धिसे परमेश्वरसे प्रेम कर। दूसरी यह कि तू अपने पड़ोसीसे अपने समान ही प्रेम कर।'

'पड़ोसीसे अपने समान ही प्रेम कर!' कितनी सीधी और सरल बात! पर करनेमें कितनी टेढ़ी!

× × ×

पड़ोसी हो जाना एक बात है, पड़ोसी बनना बिलकुल दूसरी बात है। मकानकी दीवालका मिला होना इस बातका सूचक नहीं कि इधरके और उधरके पड़ोसीका हृदय भी मिला हुआ है। हृदय मिला हो तो सारा विश्व अपना पड़ोसी है। फिर कोई दो कदमपर रहता हो या दो कोसपर। दिल्लीमें रहता हो या वाराणसीमें, कलकत्तामें रहता हो, चाहे लन्दन या न्यूयार्कमें।

पड़ोसी तो वह, जिसका दिल मिला हो। पड़ोसी तो वह, जो पड़ोसीके दु:ख-दर्दको अपना दु:ख-दर्द मानता हो और मानकर ही न रह जाता हो, उसे दूर करनेके लिये जी-जानसे प्रयत्न भी करता हो।

× × ×

'भला पड़ोसी कौन तथा कौन-कौन-से गुण होते हैं भले पड़ोसीमें ?'

आजसे लगभग पैंसठ साल पहले प्रसिद्ध समाजशास्त्री पिलिरिम सोरोकिनके तत्त्वावधानमें अमेरिकामें अपने पड़ोसियोंसे प्रेम करनेवाले व्यक्तियोंका जो शोध हुआ,* उसमें उनसे पूछे गये अनेकों प्रश्नोंमेंसे यह भी एक प्रश्न था। भले पड़ोसी होनेके नाते वे अवश्य ही अधिकारी थे इस प्रश्नका उत्तर देनेके।

× × ×

अमेरिकामें भिन्न-भिन्न देशोंसे आकर लोग बस गये और अब सब मिलकर 'अमरीकन' कहलाते हैं। शोधके पात्रोंमें भी विभिन्न देशोंका प्रतिनिधित्व था। उनमें इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्डके मूल निवासी भी थे तथा रूस और इटलीके भी। डच, बेलजियन, स्कैण्डेनेवियन, जर्मन, फ्रांसीसी, चैक, स्विस, रूमानियन, हंगेरियन, फिनिश, कनाडियन आदि भी थे।

चुने हुए ७११ भले पड़ोसियोंमें ७४ प्रतिशत देहातमें पैदा हुए थे, २६ प्रतिशत नगरोंमें। धर्मकी दृष्टिसे ९८ प्रतिशत आस्तिक थे, २ प्रतिशत नास्तिक। ६१ प्रतिशत लोग कभी-कभी अपने धर्मस्थल—चर्चमें चले जाते थे, ९ प्रतिशत कभी नहीं जाते थे। हाँ, ३० प्रतिशत नियमित रूपसे चर्च जाते थे। अपनेको खुल्लमखुल्ला 'नास्तिक' कहनेवालोंमें भी प्रेम और करुणाकी भावना कम न थी। ऐसी ही एक महिलाके उद्गार थे—'मैं तो केवल एक बात जानती हूँ कि मैं जब किसी व्यक्तिको विपत्तिमें फँसा देखती हूँ तो मुझसे उसका दु:ख-दर्द देखा नहीं जाता। मैं रह नहीं सकती उसकी भरसक सेवा किये बिना।'

इन भले पड़ोसियोंमें तीन चौथाईसे कुछ अधिक थीं महिलाएँ। पुरुषोंकी संख्या २३ प्रतिशतसे भी कम थी। अमेरिकन पुरुषवर्ग रात-दिन अपने काम-धंधेमें ही जुटा रहता है। सेवा-सहायताका अधिकांश कार्य महिलाएँ ही करती हैं, विशेषत: गृहिणियाँ।

इन भले पड़ोसियोंमें सबसे अधिक मात्रा थी मध्यम श्रेणीवालोंकी, उनसे कम निम्न श्रेणीवालोंकी और उच्च श्रेणीवालोंकी सबसे कम। आमदनीकी दृष्टिसे तीन चौथाईकी आमदनी ३ हजारसे १० हजार डालरतक थी। लगभग १० प्रतिशतकी आमदनी इनसे अधिक थी, शेषकी इनसे कम। व्यवसायकी दृष्टिसे सम्पन्न गृहिणियोंके अतिरिक्त एक तिहाई लोग सरकारी, गैर सरकारी सेवाओंमें थे—कोई शिक्षणमें, कोई स्वास्थ्यमें। १० प्रतिशत व्यापारी थे, ५ प्रतिशतके लगभग किरानी बाबू थे और ५ प्रतिशत किसान तथा ५ प्रतिशत मजदूर थे। स्नातकोत्तर शिक्षणवाले १० प्रतिशत थे, अधिकांश हाई स्कूल या कॉलेजके छात्र रह चुके थे, एक चौथाई प्राइमरीतक ही

* पिलिरिम ए० सोरोकिन 'आलट्रूइस्टिक लव' बेकनप्रेस १९५०, (क्रॉसरिप्रिंट कं० न्यूयार्क १९६९)

पढ़े थे और कुछ लोग सर्वथा निरक्षर भी थे।

मतलब, हर तरहके और हर रंगके थे—ये भले पड़ोसी।

× × ×

हाँ तो भले पड़ोसीकी परिभाषा बताते हुए इनमेंसे ४१ प्रतिशत लोगोंने कहा—'भला पड़ोसी वह, जो 'स्वर्ण-नियम'को अमलमें लाता है।' 'स्वर्ण-नियम' है ईसाका वह उपदेश कि 'दूसरोंके साथ तुम वैसा ही व्यवहार करो, जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें।' अर्थात् भारतका पुरातन सिद्धान्त—'**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।**' (पञ्चतन्त्र ३। १०३) २० प्रतिशत लोगोंने कहा—'भला पड़ोसी वह, जिसके हृदयमें सारी मानवताके लिये प्रेम है, दया है, मैत्री है।' १९ प्रतिशत लोगोंने कहा—'भला पड़ोसी वह, जो दूसरोंमें निःस्वार्थ दिलचस्पी लेता है।' ९ प्रतिशत लोगोंने कहा—'भला पड़ोसी वह, जो ईश्वरमें विश्वास और श्रद्धा रखता है।' ७ प्रतिशत लोगोंने कहा—'भला पड़ोसी वह, जिसमें सहनशीलता भी है और धैर्य भी।' ४ प्रतिशत लोगोंने कहा—'भला पड़ोसी वह, जिसके हृदयमें दूसरोंकी सेवाकी भावना भरी रहती है।'

इस बातपर सभीने जोर दिया कि 'भला पड़ोसी 'स्वर्ण-नियम'को केवल जानता ही नहीं, अमलमें भी लाता है।'

तात्पर्य यह कि भला पड़ोसी प्रेम, सेवा, सद्व्यवहार, मैत्री और करुणाका मूर्तिमान् स्वरूप होता है।

× × ×

'भला पड़ोसी करता क्या है?'

भला पड़ोसी करता है—मानवताकी सेवा, बिना किसी स्वार्थके। किसीको भी संकटमें देखकर वह दौड़ पड़ता है, बिना किसी भेद-भावके।

मेनके जंगलमें एक बार आग लगी। बहुत-से घर जलकर राख हो गये, बढ़इयोंकी एक यूनियन थी वहाँ। उसके कुछ सदस्योंने आत्मप्रेरणासे अपने अवकाशके क्षणोंमें अपने पड़ोसियोंके कितने ही मकान नये सिरेसे बनाकर खड़े कर दिये। रेडक्रास—सरकारकी ओरसे बादमें उन्हें थोड़ी-सी सहायता मिली अवश्य, पर इन बढ़इयोंकी हार्दिक सहायता की समतामें वह नगण्य थी।

विभिन्न राज्योंमें समाज-कल्याणके लिये लाखों-करोड़ोंके बजट बनते हैं, पर सभी जानते हैं कि ऐसी अधिकांश सहायता ठण्डी, धीमी, प्राणहीन और हृदयहीन होती है।

भला पड़ोसी तो कष्टको देखते ही दौड़ पड़ता है सेवा-सहायताके लिये। सच्ची सहानुभूति, सच्चे प्रेम और सौहार्दसे भरे उसके थोड़े-से शब्द पीड़ितोंको अपार शान्ति देते हैं। समयपर सद्भावसे दी गयी चन्द कौड़ियाँ अशर्फियोंको भी मात करती हैं।

× × ×

अमेरिकाकी एक नयी बीमारी है—'बोरडम'—ऊब, उकताहट, उदासीनता, क्लान्ति। रोटी, कपड़ा, मकान आदिकी कोई खास चिन्ता न होनेपर भी आदमीको चैन नहीं। परेशानी-ही-परेशानी है। जीवनमें रस नहीं, आनन्द नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं।

भले पड़ोसियोंके ५०६ सत्कृत्योंका विश्लेषण करनेपर २३.७ प्रतिशत कार्य ऐसे निकले, जो इस 'ऊब' के लिये मरहम थे। उन सत्कृत्योंके कारण ही लोगोंके जीवनमें नीरसताके बदले रस आने लगा तथा आशा, सुख, शान्ति और आनन्दके दर्शन होने लगे, उनका जी बहलने लगा।

कितनी बड़ी बात!

भले पड़ोसियोंने अपने सीमित क्षेत्रमें ९ प्रतिशत आपसी झगड़े निपटाये, ९ प्रतिशत बीमारोंकी सेवा की, ७ प्रतिशत शिक्षाकी, ५ प्रतिशत मकानकी, ५ प्रतिशत कपड़ोंकी और ३ प्रतिशत रोटीकी समस्याएँ सुलझायीं तथा ३ प्रतिशत आर्थिक समस्याओंके निराकरणमें योगदान दिया।

'भले पड़ोसियोंसे किन लोगोंको लाभ पहुँचा?'

शोधके दिनोंतक युद्धकी छाया मिटी नहीं थी। अतः अधिकतर ऐसे लोग ही लाभान्वित हुए, जिन्हें युद्धके कारण त्रस्त होना पड़ा था। उनमें २२ प्रतिशत सैनिक थे, १९ प्रतिशत बच्चे। १५ प्रतिशत बीमार थे, १२ प्रतिशत अन्य लोग। प्रौढ़ थे ७ प्रतिशत, दरिद्र ३ प्रतिशत, वृद्ध २ प्रतिशत और १-१ प्रतिशत थे छात्र,

अपराधी, दुखी माताएँ, अन्धे और अपाहिज।

× × ×

'आपको भले पड़ोसी बननेकी प्रेरणा कैसे मिली तथा पड़ोसियोंकी सेवा-सहायताकी भावना आपमें कैसे पनपी?'

२९ प्रतिशत लोगोंने कहा—'हमारे माता-पिताने, हमारे परिवारने हमें ऐसी प्रेरणा दी।' २९ प्रतिशत बोले—'हमें लगा कि मानव-प्रकृतिमें स्नेह और सहकारिता है तथा मानव-विकासके लिये पड़ोसियोंकी सेवा अनिवार्य आवश्यकता है।' २१ प्रतिशतने कहा—'धर्मने हमें ऐसी प्रेरणा दी।' ११ प्रतिशत बोले—'जीवनके निजी अनुभवोंने हमें पड़ोसियोंकी सेवाके लिये प्रेरित किया।' ८ प्रतिशतने कहा—'स्वाध्याय एवं शिक्षासे हमें इसकी प्रेरणा मिली।' १ प्रतिशतसे कुछ अधिक लोगोंने कहा—'किसी अद्भुत अनुभवोंने हमें ऐसी प्रेरणा दी कि पड़ोसियोंकी सेवा हमारा कर्तव्य है।' १ प्रतिशतसे भी कम लोगोंने कहा कि 'हमें सत्-साहित्यसे ऐसी प्रेरणा मिली।'

× × ×

मतलब, सौहार्दपूर्ण पारिवारिक वातावरण, स्नेहिल सेवा-भावी माता-पिता, सहकार और स्नेह, धर्म एवं नैतिकताके उपदेश मानवको प्रेरित करते हैं कि वह भला पड़ोसी बने।

अमेरिकामें विभक्त-परिवारका बोलबाला है। बच्चे पैरोंपर खड़े होनेयोग्य हुए कि वे अपनी मड़ैया अलग बसा लेते हैं। फिर 'मम्मी' और 'डैडी' से केवल चाय पीने-पिलानेतकका सम्बन्ध रह जाता है। सोरोकिनके इस शोधसे यह बात भी प्रकट हुई कि जिन परिवारोंमें बच्चे अधिक थे और जो संयुक्त-परिवार थे, उन्हींके बच्चोंमें भले पड़ोसी बननेकी भावना अधिक पल्लवित हुई। ४५.८ प्रतिशत ऐसे परिवारोंमें ६ या ६ से अधिक बच्चे थे, २४ प्रतिशतमें ४-४, ५-५ बच्चे थे। शोधसे यह बात भी प्रकट हुई कि भले पड़ोसियोंमें ९० से ९२ प्रतिशत लोगोंके हृदयमें अपने अध्यापकोंके प्रति अत्यधिक आदर और सम्मानकी भावना थी।

× × ×

प्रतिदिन ही तो हम देखते हैं कि लोग एक फ्लैटमें रहते हैं, एक मकानमें रहते हैं, एक अहातेमें रहते हैं, एक मुहल्लेमें रहते हैं, एक गाँव, कस्बे या नगरमें रहते हैं; किंतु उन्हें अपने पड़ोसियोंसे कोई मतलब नहीं।

किसीका नाम पूछिये, पता पूछिये, हाल पूछिये—कुछ मालूम नहीं। हमारे अगल-बगल कौन रहता है, कौन बीमार है, कौन किस कष्टमें, किस विपत्तिमें फँसा है, कौन रो रहा है, चिल्ला रहा है, भूखा है, नंगा है—हमें कुछ पता नहीं। हमें दूसरोंसे कोई प्रयोजन नहीं।

संयोगसे किसीकी चीख-पुकार हमारे कानोंमें पड़ जाती है तो हम मुँह बिदकाकर अपने ट्रांजिस्टरकी आवाज और तेज कर देते हैं। किसी पड़ोसीकी दुर्दशा आँखोंके आगे पड़ जाती है तो हम आँखें मूँदकर आगे बढ़ जाते हैं। हमें उससे क्या लेना-देना? मरे तो अपनी मौत, जिये तो अपनी मौत! उसके लिये हम क्यों अपने आराममें बाधा डालें?

× × ×

यों हम अपने घरका कूड़ा-कचरा पड़ोसीके दरवाजेपर फेंकनेमें कुशल हैं। अपने बच्चोंको पड़ोसीके घरके आगेकी नालीमें मल-मूत्र त्याग करनेके लिये बैठानेका पूरा ध्यान रखते हैं। अपने स्वार्थके लिये पड़ोसीको सतानेमें हम रत्तीभर भी संकोच नहीं करते। पड़ोसीके द्वारा हमारा कोई निजी लाभ हो जाय तो अवसरका पूरा लाभ उठानेमें हम कभी नहीं चूकते। पर पड़ोसीके लाभके लिये एक कौड़ी व्यय करना भी हमें भार लगता है। उसके प्रति सहानुभूतिके दो मीठे शब्द बोलनेमें भी हमारा जी कचोट उठता है।

'पड़ोसीसे अपने समान ही प्रेम कर।'

देखने-सुननेमें कितनी छोटी-सी, सरल-सी बात; पर है कितनी कठिन!

× × ×

पड़ोसमें आग लगे तो हम भी उसकी लपटसे बच नहीं सकते। पड़ोसमें महामारी फैले तो हम भी उसकी चपेटमें आये बिना रह नहीं सकते। पड़ोसमें बाढ़ आये तो उसके प्रवाहमें पड़े बिना हमारी मुक्ति नहीं। पड़ोसमें

मुर्दा पड़ा हो तो उसकी बदबूसे हमारा त्राण नहीं। पड़ोसमें कोई उपद्रव हो, दंगा-फसाद हो, कोई संकट आ पड़े तो उसका स्पर्श हमें होगा ही। पुलिस आयेगी तो हमें गवाही भी देनी ही पड़ेगी।

तात्पर्य, हर समय, हर घड़ी, पड़ोसीसे हमारा प्रयोजन पड़ता है। पड़ोसी ही सबसे पहले हमारे काम आता है, भले ही हम उसकी ओर कोई ध्यान न दें। हमारी शानदार कोठी हो या टूटा-फूटा झोपड़ा, हम अमीर हों या गरीब, ब्राह्मण हों या शूद्र, डिग्रीधारी ग्रेजुएट हों या निरक्षर भट्टाचार्य—कोई भी हों, पड़ोसीसे हमारा पाला पड़ेगा ही। हम लाख चाहें, किंतु पड़ोसीसे दूर हम रह नहीं सकते। पड़ोसी भले होंगे तो हमारी भी प्रतिष्ठा होगी, बुरे होंगे तो हमें भी बदनामीका मौर अपने माथेपर बाँधना पड़ेगा। तब पड़ोसियोंसे दूर-दूर रहनेसे मतलब ?

माना पड़ोसीके और हमारे स्वार्थोंमें संघर्ष होता है, अक्सर होता है, कदम-कदमपर होता है; पर संघर्षसे, विरोधसे काम चलेगा नहीं। ***'जलमें रहे मगरसे बैर'*** सरासर मूर्खता है। समझदारी तो इसीमें है कि हम पड़ोसीसे मिल-जुलकर रहें, प्रेम और सद्भावपूर्वक रहें, उसे अपना बनाकर रहें। प्रेम एक ऐसा रसायन है, जिससे सारे वैर-विरोध और संघर्ष अपने-आप ही दूर हो जाते हैं।

× × ×

प्रश्न है कि पड़ोसीसे प्रेम किया कैसे जाय ?

संत बेनेडिक्टने पड़ोसीसे प्रेम करनेके लिये तीस सत्कार्योंकी तालिका दी है—१. हत्या न करो, २. अनैतिक आचरण न करो, ३. चोरी न करो, ४. लोभ-लालच न करो, ५. झूठी गवाही न दो, ६. प्रत्येक व्यक्तिका आदर करो, ७. ऐसा कोई काम न करो, जिसे तुम अपने लिये नहीं करना चाहते, ८. दुखियोंका दुःख मिटाओ, ९. नंगोंको कपड़े दो, १०. बीमारोंको जाकर देखो, ११. मृतकोंका शव-संस्कार करो, १२. कष्ट-पीड़ितोंकी मदद करो, १३. दुखियोंको सान्त्वना दो, १४. किसीपर क्रोध न करो, १५. किसीसे बदला लेनेका भाव न रखो, १६.किसीसे भी छल-कपट न करो, १७. दिखावटी संधि न करो, १८. उदारता न छोड़ो, १९. बुराईके बदले बुराई न करो, २०. किसीके साथ अत्याचार न करो, २१. तुम्हारे साथ कोई अत्याचार करे तो शान्तिपूर्वक सह लो, २२. शत्रुसे भी प्यार करो, २३. गालीके बदले आशीर्वाद दो, २४. किसीकी निन्दा न करो, २५. किसी व्यक्तिसे घृणा न करो, २६. किसीसे ईर्ष्या मत करो, २७. लड़ाई-झगड़ेमें रस न लो, २८. बड़ोंका आदर करो, २९. छोटोंसे प्यार करो, ३०. शत्रुओंका भला मनाओ और दिन डूबनेसे पहले ही विरोधीसे क्षमा माँगकर सन्धि कर लो।

कैसे उत्तम सत्कार्य!

पतंजलिकी, भगवान् बुद्धकी—मैत्री, करुणा और मुदिताकी भावनाका विस्तार।

× × ×

संत बासिल कहते हैं—'प्रेमके दो रूप हैं—१. प्रेमास्पदको चोट लगी हो तो उसके दुःखमें दुखी होना और २. प्रेमास्पदके सुखमें सुखी होना और उसे सुख पहुँचाना।'

पड़ोसीसे प्रेमका अर्थ है—पड़ोसीके दुःखमें दुखी होना। ऐसा कोई काम न करना, जिससे उसे दुःख हो। उसे हर तरहसे सुख पहुँचाना। वह बुराई भी करे तो उसके बदलेमें भलाई करना। गाली दे तो भी उसे आशीर्वाद देना।

लाख दुष्ट हो, लाख बुरा हो हमारा पड़ोसी, हमें उसे जीतना है प्रेमसे ही।

× × ×

यदि कोई कहता है कि 'मैं ईश्वरसे प्रेम करता हूँ' और अपने भाईसे वैर करता है तो वह झूठा है। कारण, जो अपने भाईसे, जिसे उसने देखा है, प्रेम नहीं करता, वह उस ईश्वरसे कैसे प्रेम कर सकता है, जिसे उसने देखा ही नहीं।

याद रखनेकी बात है—

यह तो घर है प्रेमका खालाका घर नाहिं।
सीस उतारे भुइँ धरे तब पैठे या माहिं॥

मौन-व्याख्यान

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

उपदेशकका पद वस्तुतः बहुत ही दायित्वपूर्ण है। अनुभवी पुरुष ही दूसरोंको उपदेश करनेका अधिकारी होता है। जबतक साधना करते-करते किसी विषयमें सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती, तबतक उस विषयका उपदेशक बनना अपने और दूसरोंके साथ ठगी करना है। और इसी कारण उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता। खास करके पारमार्थिक विषयमें तो उपदेशक बनना बहुत ही कठिन है। उपदेशकमें निम्नलिखित पाँच बातें अवश्य ही होनी चाहिये। १—जिस विषयका उपदेश करे, उसका पारदर्शी हो; २—जिस साधनाका उपदेश करे, उसको स्वयं करनेवाला हो; ३—उपदेशमें धन, मान, पूजा आदिकी प्राप्तिके रूपमें अपना किंचित् भी स्वार्थ न हो; ४—जिस विषयका उपदेश करे, वह विषय परिणाममें सबके लिये कल्याणकारक हो और ५—उपदेशमें किसी प्रकारका भी दम्भाचरण न हो। जिस उपदेशकमें ये पाँचों बातें होती हैं, उसके उपदेशका बड़ा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि आकर्षक भाषा, शब्दसौन्दर्य और यथायोग्य भावोंका प्रदर्शन आदि साधन श्रोताओंके चित्तको खींचनेमें बहुत सहायक होते हैं, परंतु ये सब व्याख्यान-कलाकी चीजें हैं। कलाके साथ हृदयके परम शुद्ध और कल्याणकारक भावोंका संयोग हो, तभी उस कलासे विशेष लोकोपकार होता है। जो कला केवल कलाके लिये होती है अथवा जिस कलाके प्रदर्शनमें कुवासनाओंके उत्पादक और वर्द्धक दूषित भावोंका संयोग होता है, वह कला समाजके लिये कभी हितकर नहीं हो सकती, चाहे वह कितनी ही विकसित और आकर्षक क्यों न हो। इसके विपरीत जिस अनुभवपूर्ण वाणीमें सत्य, प्रेम, सरलता और निःस्वार्थ लोकसेवाकी भावना होती है, वह कलाकी दृष्टिसे आकर्षक न होनेपर भी समाजके लिये अत्यन्त कल्याणकारिणी होती है। उपदेशकमें उपर्युक्त पाँच गुणोंके साथ वाग्मिताकी कला भी हो तो वह सोनेमें सुगन्धके समान है और ऐसा उपदेशक जगत्की बहुत सेवा कर सकता है। परंतु यह बात ध्यानमें रहनी चाहिये कि जबतक मनुष्यके मनमें आत्मसुधारकी प्रबल आकांक्षा नहीं है—और आत्म-संशोधन और आत्मोत्थानके लिये प्राणपणसे प्रयत्न नहीं किया जाता, तबतक उपदेशक बनना विडम्बनामात्र है।

सच्ची बात तो यह है कि जिनमें उपदेश देनेके योग्य सदगुण हैं, उनको भी उपदेशक बननेकी इच्छा नहीं होनी चाहिये। जबतक ऐसी इच्छा है, तबतक कुछ-न-कुछ दुर्बलता मनमें छिपी है। महापुरुषोंके आचरण ही आदर्श सत्कर्म और उनके स्वाभाविक वचन ही उपदेश होते हैं। वे वस्तुतः न तो उपदेशक बनते हैं और न कहलाते हैं। उनकी करनी-कहनीसे अपने-आप ही जगत्को उपदेश मिलता है, और इस सच्चे उपदेशका क्षेत्र आरम्भमें बहुत विस्तृत न होनेपर भी इसका जो कुछ प्रभाव होता है, वह बहुत ही ठोस, स्थायी और आगे चलकर बहुत ही व्यापक हो जाता है। उपदेश देनेकी तो इच्छा ही मनमें न होनी चाहिये। अपने शरीर-मन-वाणीसे होनेवाली क्रियाओंमें भी यह भाव न रहे कि इन्हें देखकर लोग इनसे शिक्षा ग्रहण करें। ऐसी चेष्टा करे, जिसमें स्वाभाविक ही सब क्रियाएँ सत्यके आधारपर हों और निर्मल हों, निरन्तर इस बातको देखता रहे कि मेरे अन्दर सत्त्वगुण बढ़ रहा है या नहीं। यदि सत्त्वगुण बढ़ गया तो रज और तम अपने-आप ही दब जायँगे। सत्त्वकी शक्ति बड़ी प्रबल होती है। जिसके हृदयमें शुद्ध सत्त्वभाव है और जिसकी क्रियाओंमें सत्त्वगुणकी प्रबलता है, उसके द्वारा जो कुछ होता है, सभी लोककल्याणकारी होता है। वह जहाँ निवास करता है, वहाँका वातावरण शुद्ध होता है। वातावरणकी शुद्धिसे परमाणुओंमें शुद्धि आती है और वे परमाणु जहाँतक फैलते हैं, जिसके साथ जाते हैं, वहीं शुद्धि करते हैं।

उपदेशक बनना कोई पेशेकी चीज नहीं है। यह तो बहुत बड़े अधिकारकी बात है, जो वैसी योग्यता होनेपर ही प्राप्त होता है। जहाँ अयोग्य और अनधिकारी उपदेशक होते हैं, वहाँ प्रथम तो उपदेशका असर नहीं होता और जो कुछ होता है, वह प्राय: विपरीत होता है। उपदेशककी वाणीके साथ जब लोग उसके आचरणका मिलान करके देखते हैं और जब वाणी एवं आचरणमें परस्पर बहुत अन्तर पाते हैं, तब उनकी या तो उस वाणीपर श्रद्धा नष्ट हो जाती है अथवा इससे उन्हें यह शिक्षा मिलती है कि कहनेमें अच्छापन होना चाहिये, क्रिया चाहे उसके विपरीत ही हो और ऐसी शिक्षाके ग्रहण हो जानेपर मनुष्यमें दम्भादि दोष सहज ही आ जाते हैं, जिनसे उसका पतन हो जाता है। व्यक्तियोंके भाव ही समाजमें फैलते हैं और यों समाजभरका पतन होने लगता है। समाजके इस पतनमें प्रधानतया अयोग्य उपदेशक ही कारण होते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि जो लोग स्वयं सुधरे हुए नहीं हैं, जिनमें स्वयं सद्‌गुण नहीं हैं, जो स्वयं किसी विषयके अनुभवी नहीं हैं, वे यदि उपदेशकका बाना धारणकर किसी स्वार्थसे या दम्भसे सुधारका और सद्‌गुणोंका उपदेश करते हैं अथवा बिना अनुभव किये विषयमें अपनी दक्षता प्रकट करते हैं तो समाजके प्रति अपराध करते हैं। अवश्य ही साधकोंका परस्पर हरिचर्चा करना, कथावाचकोंका कथा कहना, मित्रमण्डलीमें सत्-चर्चा करना, स्कूलके अध्यापकोंका बच्चोंके प्रति उपदेश करना आदि इस अपराधमें नहीं गिने जा सकते, तथापि यहाँ भी इतनी बात तो है ही कि उपदेशके साथ आचरण होता तो उसका परिणाम कुछ विलक्षण ही होता।

पारमार्थिक गुरुका आसन तो बहुत ही जिम्मेवारीका पद है। इसमें तो मनुष्यके जीवनको लेकर खेलना है। अनुभवी गुरुओंके अभावसे ही शिष्योंका पतन होता है। गुरुओंमें जैसा आचरण होता है, शिष्य उसीका अनुसरण करते हैं। गुरु यदि विषयी होता है, कामी, क्रोधी या लोभी होता है तो शिष्य भी वैसे ही बन जाते हैं, अतएव गुरुका पद स्वीकार करना तो खाँडेकी धारके समान है। जो विषयी गुरु अपने दुर्गुणोंका आदर्श सामने रखकर शिष्योंके पतनमें कारण होता है, उसकी दुर्गति नहीं होगी तो और किसकी होगी?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुभवी तत्त्वज्ञ गुरुकी कृपाके बिना भगवत्तत्त्वका ज्ञान नहीं हो सकता, और यह भी ध्रुव सत्य है कि ऐसे गुरुको ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और साक्षात् परब्रह्म समझकर सतत प्रणाम और आत्मसमर्पण कर देना चाहिये। भगवान्‌ने कहा है—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत्कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

मुझको आचार्य गुरु समझना, मनुष्य समझकर मेरी अवज्ञा या असूया न करना; क्योंकि गुरु सर्वदेवमय होता है।

परंतु यह बात उन्हीं गुरुओंपर लागू होती है, जो शिष्यके अज्ञानका नाश करनेके लिये भगवत्सेवाके भावसे ही गुरुपदको स्वीकार करते हैं, जो गुरु बनकर भी परम ज्ञान-दानके द्वारा भगवत्स्वरूप शिष्यकी सेवा ही करना चाहते हैं, ऐसे गुरु ही शिष्यका भवबन्ध काटनेमें समर्थ होते हैं। जो अपने शरीरकी सेवा कराना चाहते हैं, शिष्यके धनसे अपने लिये विलाससामग्रीका संग्रह करनेकी इच्छा रखते हैं, एवं मान और पूजाके लिये ही गुरुका पद ग्रहण करते हैं, उन गुरुओंसे भवबन्धका छेदन नहीं हो सकता। और न उनके लिये ये शब्द ही हैं।

शिष्यकी श्रद्धाके प्रतापसे कहीं-कहीं अयोग्य गुरुसे भी लाभ हो जाता है, परंतु इसमें शिष्यकी श्रद्धा ही कारण होती है, जिसके कारण वह उस लाभमें अपनी श्रद्धाको कारण न समझकर गुरुकृपाको ही कारण मानता है। परंतु गुरु बननेवालेको ऐसे अवसरोंपर सावधान रहना चाहिये और शिष्यकी श्रद्धासे अनुचित लाभ उठानेकी चेष्टा करके अपनेको ठगना नहीं चाहिये।

सच्चे गुरुओंको विशेष उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं होती, उनके आचरणसे ही शिक्षा मिल जाती है। यहाँतक कि उनके कृपालु हृदयमें शिष्यकी स्मृति हो जानेमात्रसे ही कल्याण हो जाता है। इसीलिये सत् शिष्य साधक **'गुरोःकृपा हि केवलम्'** मानते हैं। ऐसे गुरुओंको अज्ञात कृपासे चुपचाप शिष्यके हृदयमें शक्तिसंचार होकर उस शक्तिके प्रतापसे शिष्यका समस्त संशय नष्ट हो जाता है। यों अदृश्यरूपमें गुरु-शक्तिकी क्रिया चलती रहती है। यद्यपि गुरुकृत मौखिक उपदेशकी सार्थकता है, और साधारणतया उसकी आवश्यकता भी बहुत है, परंतु यह याद रखना चाहिये कि वाणीकी अपेक्षा संकल्पकी शक्ति कहीं अधिक है। और एक बात यह भी है कि कुछ बहुत ऊँची स्थितिपर पहुँचे हुए महान् पुरुषोंको छोड़कर अन्य लोगोंकी, जो वाणीका बहुत अधिक प्रयोग करते हैं, पवित्र संकल्पशक्तिका ह्रास भी हो जाता है। इसलिये बहुत-से सत्पुरुष यथासाध्य बहुत ही कम बोला करते हैं। (यद्यपि यह नियम नहीं है) ऐसे संकल्पशक्तिसम्पन्न महात्मा यदि चाहें तो मुँहसे एक शब्द भी न बोलकर केवल अपनी कल्याणमयी दृष्टिसे, आभ्यन्तरिक स्वाभाविकी शुभ भावनासे, अथवा संकल्पशक्तिके प्रभावसे शिष्यका अशेष कल्याण कर सकते हैं। और यह जाना गया है कि ऐसे महापुरुषगण शिष्यकी मानसिक स्थिति देखकर, उसकी धारणाके योग्य पात्रताका अनुभवकर धीरे-धीरे चुपचाप उसमें यथायोग्य शक्ति-संचार करते हुए उसकी मानसिक स्थिति और धारणा भूमिको क्रमशः उच्चसे उच्चतर अवस्थामें पहुँचाते रहते हैं और जब देखते हैं, कि यह शक्तिको पूर्णतया धारण करनेयोग्य हो गया, तब उसमें शक्तिका पूरा संचारकर क्षणमात्रमें ही दिव्य प्रकाशकी ज्योतिसे उसका अनादिकालीन अज्ञानान्धकार हर लेते हैं। यों बिना ही उपदेशके उसका जीवन धन्य और कृतकृत्य हो जाता है!

इसीसे यह कहा गया है—

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥

'क्या ही आश्चर्य है, पवित्र वटवृक्षके नीचे वृद्ध शिष्य और युवा गुरु विराजमान हैं। गुरुका मौन-व्याख्यान हो रहा है और उसीसे शिष्योंका संशय कट गया है।'

वस्तुतः आत्माराम महापुरुषमें आत्माकी दृष्टिसे बाल, युवा या वृद्ध किसी अवस्थाका होना सम्भव नहीं। आत्मा नित्य ही युवा है; क्योंकि वह एकरस है। ऐसे गुरुके समीप आनेवाले अनादिकालसे प्रकृतिके प्रवाहमें पड़े हुए जीवरूप शिष्योंका अत्यन्त वृद्ध होना भी उचित है। परंतु जो ऐसे गुरुके सामने आ गया और जिसको ऐसे गुरुने शिष्य स्वीकार कर लिया, उसके अज्ञानका नाश हो ही गया समझना चाहिये; क्योंकि ऐसे महापुरुषोंका किसीको स्वीकार कर लेना निश्चय ही अमोघ होता है।

परन्तु आजके जमानेमें जहाँ गली-गली उपदेशक और गुरु मिलते हैं, ऐसे सद्गुरु महात्माओंका प्राप्त होना बहुत ही कठिन है। ऐसे महात्मा भगवत्कृपासे ही प्राप्त होते हैं। अतएव जिनको इस प्रकारके महात्माओंके दर्शन और गुरुरूपसे वरण करनेकी प्रबल इच्छा हो उन्हें भगवान्के सामने कातर भावसे रोना चाहिये। भगवान्की कृपा होनेपर उनकी प्रेरणासे ऐसे महात्मा आप ही आकर मिल जायँगे, अथवा स्वयं भगवान् ही गुरुरूपसे प्रकट होकर ऐसे शिष्यका उद्धार कर देंगे।

भक्तको दु:ख नहीं होता

(संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल)

नदियाके पण्डित श्रीवास गौरांगके बड़े भक्त थे, गौरांग महाप्रभु बीच-बीचमें श्रीवासके घरपर कीर्तन करने जाते। इसी तरह एक दिन कीर्तनके लिये गौरांग उनके घर गये। श्रीवासके आँगनमें सैकड़ों भक्त आनन्दमें विभोर हुए कीर्तन कर रहे थे, गौरांगको देखकर भक्तोंके आनन्दकी मात्रा सीमाको पहुँच गयी, उनका बाह्यज्ञान जाता रहा। श्रीवासके आनन्दकी तो कोई सीमा नहीं है; क्योंकि उसीके आँगनमें हरिसंकीर्तन हो रहा है। इतनेमें ही भीतरसे एक दासी घबराती हुई आयी और श्रीवासको बुलाकर अन्दर ले गयी!

श्रीवासका इकलौता बालक पुत्र बीमार है, बीमारी बढ़ गयी है, घरमें बालककी माता और अन्यान्य स्त्रियाँ बालककी सेवामें लगी हुई थीं और श्रीवास निश्चिन्त मनसे बाहर नाच रहे थे। उनको मरणासन्न पुत्रकी कोई चिन्ता नहीं है, वे जानते हैं कि प्रभु जो कुछ करते हैं, हमारे मंगलके लिये करते हैं। जो सब जीवोंकी एकमात्र गति हैं, उन्हींका नाम-संकीर्तन हो रहा है और भक्तगण आनन्दमें डूबे हुए नृत्य कर रहे हैं, इस आनन्दमें चिन्ता कैसी?

दासीके साथ श्रीवासने अन्दर पहुँचकर देखा, बालकका अन्तसमय उपस्थित है, पिताने बड़े प्रेमसे भगवान्‌का तारकब्रह्म मन्त्र उसे सुनाया। पुत्रको मृत्युमुखमें जाते देखकर उसकी माता तथा दूसरी स्त्रियोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। श्रीवासने कहा, 'जिसके नाम श्रवणमात्रसे महापापी भी परमधामको चला जाता है, वही स्वयं भगवान् आज तुम्हारे आँगनमें नाच रहे हैं, इस पुत्रके सौभाग्यके लिये ब्रह्मातक तरसते हैं, यदि पुत्रपर तुम्हारा वास्तविक स्नेह है तो उसकी ऐसी दुर्लभ मृत्युके लिये आनन्द मनाओ, वह बड़ी ही शुभ घड़ीमें जन्मा था, तभी तो आज भगवान्‌के सामने उसका नामकीर्तन सुनते-सुनते इसने प्राण त्याग किये हैं। मेरा मन तो आज आनन्दसे उछल रहा है। यदि तुम लोग किसी तरह अपने मनको शान्त कर सकतीं तो कम-से-कम जबतक कीर्तन होता है, तबतक तो चुपचाप रहो। कहीं बीचमें रो उठोगी तो कीर्तन भंग हो जायगा।'

ब्राह्मणीने पतिके वचन मानकर दु:सह पुत्रशोकके आँसुओंको किसी तरह रोक लिया और दूसरी स्त्रियोंके साथ वह पुत्रकी लाशके पास बैठकर हरिनाम-चिन्तन करने लगी। धन्य!

श्रीवास पुत्रके शवको जमीनपर लिटाकर प्रफुल्लित मन और खिले हुए मुखकमलसे बाहर लौट आये और दोनों भुजा उठाकर 'हरि बोल-हरि बोल' की तुमुल ध्वनि करके नाचने लगे। किसीको भी इस घटनाका पता नहीं लगा। इस समय रातके आठ बजे थे। नृत्य-कीर्तनमें ढाई पहर रात बीत गयी। किसी तरह एक भक्तको यह बात मालूम हो गयी, उसने दूसरेसे कहा, क्रमश: बात फैल गयी, जो सुनता वही नाचना छोड़कर श्रीवासकी ओर देखने लगता। श्रीवास उसी महानन्दमें नाच रहे हैं। श्रीवासने दिखला दिया कि भक्तको सांसारिक पदार्थोंके नाश हो जानेसे कोई दु:ख नहीं होता। वह जिस आनन्द-सिन्धुमें निमग्न रहता है, उसके सामने जगत्‌का बड़े-से-बड़ा दु:ख भी तुच्छ-नगण्य प्रतीत होता है **'यस्मिन् स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते।'**

भक्तोंकी दृष्टिमें जगत् भगवान्‌की लीलामात्र है, बाजीगरके नित्य साथी—उसकी प्रत्येक क्रीड़ाका मर्म समझनेवाले टहलुएकी भाँति वे भगवान्‌की सभी लीलाओंमें हर्षित होते हैं, मृत्यु उनकी दृष्टिमें कोई पदार्थ ही नहीं है। इसी सुखमें आज श्रीवासका नृत्य भी बन्द नहीं हुआ, परंतु भक्तोंमें इस बातके फैल जानेसे उन्होंने कीर्तन रोक दिया, मृदंग और करतालकी ध्वनि बन्द हो गयी। महाप्रभु गौरांगदेवको भी बाह्यज्ञान हो गया, वे भक्तोंकी ओर देखकर कहने लगे, 'भाइयो! क्या हुआ? मेरे हृदयमें रोना क्यों आता है?' फिर श्रीवासकी तरफ मुख फिराकर प्रभु बोले, 'पण्डित! तुम्हारे घरमें कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी? मेरे प्राण क्यों रो रहे हैं?' श्रीवासने मुसकराते हुए कहा, 'प्रभो! जहाँ आप उपस्थित हैं, वहाँ दुर्घटना क्यों होने लगी?' प्रभुने इस बातपर विश्वास नहीं किया, वे भक्तोंसे पूछने लगे। पर किसीसे भी

सहजमें यह दु:खद संवाद कहते नहीं बना। अन्तमें एक भक्तने कहा, 'प्रभो! श्रीवासका पुत्र जाता रहा।' प्रभुने कहा 'कब? कितनी देर हुई?' भक्तोंने कहा, 'रातको आठ बजे यह घटना हुई थी, इस समय करीब दो बज गये हैं।' यह सुनकर श्रीगौरांग श्रीवासकी ओर देखने लगे, श्रीवासका मुख महान् आनन्दसे प्रफुल्लित हो रहा है, महाप्रभु श्रीवासका यह भाव देखकर बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—

'धन्य धन्य श्रीवास! आज तुमने श्रीकृष्णको खरीद लिया।'

महाप्रभुका हृदय द्रवित हो गया, नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, प्रभुकी आँखोंमें आँसू देखकर श्रीवासने कहा, 'प्रभो! मैं पुत्रशोक सहन कर सकता हूँ, परंतु आपके नेत्रोंमें जल नहीं देख सकता, आप शान्त हों, मुझे कोई दु:ख नहीं है—दु:खकी सम्भावना भी नहीं है।'

भक्तोंने मृत बालककी लाशको बाहर आँगनमें सुला दिया, महाप्रभु उसके पास जाकर उससे जीवितकी तरह पूछने लगे, प्रभुके प्रश्न करते ही मृतदेहमें प्राणोंका संचार हो गया, बालक बोलने लगा। इस आश्चर्यमयी घटनासे सभी लोग चकित हो गये। बालकने कहा, 'प्रभो! इस जगत्में मेरा काम पूरा हो गया, अब मैं इससे बहुत अच्छी जगह जा रहा हूँ, आप कृपा करें, जिससे भगवच्चरणोंमें मेरी मति हो।' इसके बाद ही शरीर पुन: निर्जीव हो गया!

पुत्रकी बोली सुनकर माताका शोक कुछ कम हुआ, महाप्रभुके समझानेसे सभी शोक भूल गये। प्रभु कहने लगे, 'श्रीवास! जब संसारमें आये हो, तब तुम्हें भी सांसारिक नियमोंके अधीन ही रहना होगा। परंतु दूसरे लोग इससे कठिन नियमोंको क्लेशसे सहते हैं, तुम क्लेशसे मुक्त हो। पर यह न समझो कि तुम्हारा पुत्र जाता रहा है, उस एकके बदलेमें श्रीनित्यानन्द और मुझको दोनोंको तुम अपने पुत्र समझो!'

प्रभुके इन वचनोंसे श्रीवास और उनकी पत्नीका हृदय आनन्दसे भर गया। वे गद्गद होकर हरिध्वनि करने लगे। भक्तगण मृतदेहको संस्कारके लिये ले गये। सबका शोक-दु:ख जाता रहा।

जीवन-दर्शन

एमरसन अमेरिकाके महान् दार्शनिक और विचारक थे। वे अपने समयके बहुत बड़े तत्त्वज्ञ थे। उनका सम्पूर्ण जीवन अन्तरात्मा-परमात्माके चरणोंपर समर्पित था। वे कहा करते थे कि परमात्मासे ही सम्बन्ध रखना चाहिये। उनके चिन्तनसे जीवन अमृतमय हो उठता है। संसारकी वस्तुएँ नश्वर और क्षणभंगुर हैं। इनका विश्वास नहीं करना चाहिये।

एक दिन वे एकान्तमें बैठकर ईश्वरका चिन्तन कर रहे थे कि अचानक एक मित्रने उनकी परीक्षा ली। मित्रने अपने-आपको विशेष चिन्तासे संतप्त प्रकट किया।

'कुछ कहोगे भी कि क्या बात है। तुम्हारी चिन्ताका कारण मैं भी तो जानूँ।' एमरसन अपने मित्रकी ओर देखने लगे।

'भाई! कुछ मत पूछो। हमलोगोंके भाग्यमें ऐसा ही होना था। क्या आप जानते नहीं हैं कि आज रातको ही सम्पूर्ण संसार कालके गालमें समा जायगा। प्रलय उपस्थित है।' मित्र विस्मित था।

एमसरनके मनमें आनन्द थिरक उठा। वे इस समाचारसे बहुत प्रसन्न दीख पड़े।

'मित्र! आपने बड़ी अच्छी बात बतायी। इससे बढ़कर शुभ समाचार दूसरा हो ही क्या सकता है? इस संसारके बिना भी मनुष्य बड़े आराम और सुखसे रह सकता है। ईश्वरीय राज्य आयेगा और मनुष्य अपने क्षणभंगुर जीवनमें सच्ची शान्ति और वास्तविक सत्यका अनुभव करेगा।' एमरसनने धन्यवाद दिया, वे निश्चिन्त थे।

साधकोंके प्रति—

[दृढ़ निश्चयकी महिमा]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मैंने सन्तोंसे सुना है कि 'परमात्मा हैं'—ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय तो अपने-आपको जनानेकी जिम्मेदारी भगवान्‌पर आ जाती है। हम भगवान्‌को अपने उद्योगसे नहीं जान सकते, पर 'भगवान् सब जगह हैं'—यह दृढ़ भाव होनेपर भगवान् खुद अपने-आपको जना देते हैं।

भगवान् सब जगह हैं—यह बात हमें जँची हुई है ही, फिर इसमें कमी क्या है? इसमें एक बातकी कमी है कि हम जानते हैं कि यह संसार पहले ऐसा नहीं था और फिर ऐसा नहीं रहेगा तथा अभी भी हरदम बदल रहा है, फिर भी संसारको 'है' मान लेते हैं अर्थात् अपने इस अनुभवका निरादर करते हैं। इस कारण 'परमात्मा हैं'—इस मान्यताकी दृढ़तामें कमी आ रही है। इसलिये अपने अनुभवका आदर करें।

जैसे, जबतक नींद नहीं आती, तबतक स्वप्न नहीं आता और नींद खुलनेके बाद भी स्वप्न नहीं रहता, बीचमें (नींदमें) स्वप्न आता है। बीचमें भी आप उसको सच्चा मान लेते हो, नहीं तो वह है ही नहीं। इसी तरह संसारको मान लें कि यह संसार, शरीर पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, बीचमें भी केवल दीखते हैं, वास्तवमें हैं नहीं। अब कोई कहे कि संसार, शरीर आदि प्रत्यक्ष दीखते हैं, इनको 'नहीं' कैसे मानें? तो भाई! स्वप्न दीखनेमें कम सच्चा थोड़े ही दीखता था। जब दीखता था, तब ठीक सच्चा ही दीखता था, परंतु जगनेपर स्वप्न नहीं दीखता। इससे सिद्ध हुआ कि वह था ही नहीं। आजसे सौ वर्ष पहले ये शरीर थे क्या? और सौ वर्षके बाद ये शरीर रहेंगे क्या? हरेक आदमी मान लेगा कि बिलकुल नहीं रहेंगे। '**आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा**' अर्थात् जो आदि और अन्तमें नहीं होता, वह वर्तमानमें भी नहीं होता। इस दृष्टिसे यह सब-का-सब निरन्तर 'नहीं' में भरती हो रहा है। जितनी उम्र बीत गयी, उतनी तो 'नहीं' में भरती हो ही गयी। अब जितनी उम्र बाकी रही, वह भी प्रतिक्षण 'नहीं' में भरती हो रही है। यह सब संसार प्रतिक्षण अभावमें जा रहा है। जितना जन्म है, वह प्रतिक्षण मृत्युमें जा रहा है। जितना सर्ग है, वह प्रतिक्षण प्रलयमें जा रहा है। जितना महासर्ग है, वह प्रतिक्षण महाप्रलयमें जा रहा है।

इस संसारको नाशवान् कहते हैं। जैसे धनके कारण मनुष्य धनवान् कहलाता है। अगर धन नहीं हो तो वह धनवान् नहीं कहलाता, ऐसे ही संसार नाशवान् कहलाता है तो इसमें नाशके सिवाय कुछ नहीं है, नाश-ही-नाश है। अगर 'परमात्मा हैं'—यह दृढ़ निश्चय हो जाय तो जो 'नहीं' को 'है' माना है, वह आड़ हट जायगी और परमात्मा प्रकट हो जायँगे! कारण कि परमात्मा तो हैं ही, उनका कभी अभाव नहीं होता। परमात्मा सब जगह होनेसे यहाँ भी हैं, सब समयमें होनेसे अभी भी हैं, सबमें होनेसे अपनेमें भी हैं और सबके होनेसे हमारे भी हैं। उनका अभाव कभी हो नहीं सकता, कभी हुआ नहीं, जब कि संसारमात्रका अभाव प्रतिक्षण हो रहा है। दो ही तो चीजें हैं—परमात्मा और संसार। परमात्माका तो अभाव नहीं हो सकता और संसारका भाव नहीं हो सकता—ऐसा यथार्थ दृष्टिसे दृढ़तापूर्वक जानते ही संसारकी जगह परमात्मा दीखने लग जायँगे। अभी भी परमात्मा ही दीखते हैं; क्योंकि संसारकी तो सत्ता ही नहीं है। परमात्माकी सत्तासे ही यह संसार सत्य दीख रहा है। इसमें सत्य तो एक परमात्मा ही हैं। तो फिर यह संसार सत्य क्यों दीखता है? '***जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥***' (रा०च०मा० १।११७।८) मूर्खतासे ही यह संसार सत्य दीखता है। जो जानता है, पर मानता नहीं, उसे मूर्ख कहते हैं। जानता है कि यह संसार नाशवान् है फिर भी इसको स्थिर मानता है—यही मूर्खता है। हम जितना जानते हैं, उतना मान लें तो मूर्खता नहीं रहेगी और हम निहाल हो जायँगे।

परमात्माको तो मान लें और संसारको जान लें।

परमात्माको कैसे मानें? कि परमात्मा तो हैं; और संसारको कैसे जानें? कि संसार नहीं है। संसारको ठीक जान लेनेपर परमात्मा प्रकट हो जाते हैं। 'यह बात ठीक दीखती है, तो फिर जँचती क्यों नहीं?' इसमें कारण यह है कि संसारसे सुख लेते हो। जबतक सांसारिक सुखका लोभ रहेगा, तबतक यह 'संसार नाशवान् है, असत्य है'—ऐसा कहनेपर भी दीखेगा नहीं।

काला भौंरा बाँसमें छेद करके रहता है। बाँस कितना कड़ा होता है, पर भौंरेके दाँत इतने कठोर होते हैं कि उसमें भी गोल-गोल छेद कर देता है! परंतु जब वह कमलके भीतर बैठता है, तब रातमें कमलके बन्द होनेपर भी वह उसे काटकर बाहर नहीं जाता। वह सोचता है कि रात चली जायगी, प्रभात हो जायगा, सूर्यका उदय हो जायगा, तब कमल खिल जायगा और उस समय मैं उड़ जाऊँगा। वह बाँसमें छेद कर देता है, पर कमलकी पंखुड़ी उससे नहीं कटती। क्या वह इतना कमजोर है? वह उस कमलसे सुख लेता है, इसलिये कमजोर हो जाता है! ऐसे ही यह मनुष्य संसारसे सुख लेता है, इसलिये यह कमजोर हो जाता है। बीकानेरकी बोलीमें एक बात आती है—***'रांडरा काचा'*** अर्थात् स्त्रीके आगे बिलकुल कच्चा, स्त्रीका गुलाम। इस संसाररूपी स्त्रीके आगे यह मनुष्य कच्चा, कमजोर हो जाता है। कच्चापन क्या है? संसारसे सुख लेता है, यही कच्चापन है। इस कच्चापनको दूर करना है।

'परमात्मा हैं'—यह तो मान्यता है और 'संसार नाशवान् है'—यह प्रत्यक्ष है। संसारको ठीक जान लो तो परमात्मा प्रकट हो जायँगे, इतनी-सी बात है। थोड़ी देर बैठकर इस बातको जमा लो कि बाहर-भीतर ऊपर-नीचे सब जगह परमात्मा ही हैं। जैसे समुद्रमें गोता लगानेपर चारों तरफ जल-ही-जल है, ऐसे ही सब जगह परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। संसार तो बेचारा यों ही नष्ट हो रहा है!

प्रश्न यह है कि संसारका सुख लेना कैसे मिटे? तो इसको अपनी कच्चाई समझें तो यह मिट जायगा। इसको तो आप मिटायेंगे, तभी मिटेगा। दूसरा नहीं मिटा सकता। अतः आप अपना पूरा बल लगायें। फिर भी न मिटे तो 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारें। यह नियम है कि जब आदमी निर्बल हो जाता है, तब वह सबलका सहारा लेता ही है। एक तो सांसारिक सुखासक्तिको मिटानेकी चाहना नहीं है और एक हम उसको मिटाते नहीं हैं, ये दो बाधाएँ हैं। ये दोनों बाधाएँ हट जायँ, फिर भी सुखासक्ति न मिटे तो उस समय आप स्वतः परमात्माको पुकार उठोगे। बालककी भी मनचाही नहीं होती तो वह रो पड़ता है और रोनेसे सब काम हो जाता है। ऐसे ही सज्जनो! उस प्रभुके आगे रो पड़ो तो सब काम हो जायगा। वे प्रभु सर्वथा सबल हैं। उनके रहते हम दुःख क्यों पायें? भगवान् हमारे हैं। बालक कहता है कि माँ मेरी है, तो माँको उसे गोदमें लेना पड़ेगा। वह तो केवल एक जन्मकी माँ है; परंतु वे प्रभु सदाकी और सबकी माँ हैं।

शिवसे विनय

(श्रीचन्द्रशेखरजी शुक्ल)

हमको अपना कर लो शंकर॥
हम तुम्हरे हैं जनम-जनम के।
इसकी हामी भर लो शंकर॥
हमको अपना कर लो शंकर॥
बहते हैं भवसिन्धु बीच हम।
बाँह हमारी धर लो शंकर॥
हमको अपना कर लो शंकर॥
रहें नहीं तिलमात्र शेष अब।
दोष हमारे हर लो शंकर॥
हमको अपना कर लो शंकर॥
निकलो नहीं निकाले कबहूँ।
'शुक्ल' हिये कर घर लो शंकर॥

[प्रेषक—श्रीरविन्द्रजी अग्रवाल]

महाभारतोक्त शतरुद्रियस्तोत्र

*[वैदिक शिवोपासनामें वेदोक्त शतरुद्रियका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। शतरुद्रिय चारों वेदोंमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्राप्त होते हैं। शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायीका मुख्य भाग शतरुद्रिय ही है, जो उसमें पंचम अध्यायके रूपमें विन्यस्त है। वस्तुतः माध्यन्दिनशाखीय शुक्ल यजुर्वेदका यह १६वाँ अध्याय है। इसे रुद्रसूक्त अथवा नीलसूक्त भी कहते हैं। इसमें भगवान् शिवकी शताधिक नामोंसे स्तुति की गयी है। उपर्युक्त वैदिक शतरुद्रियका अपरिमित एवं अमोघ माहात्म्य है, परंतु शास्त्रानुसार जिनका वैदिक पूजनमें अधिकार नहीं है, उनके लिये भी इतिहास-पुराणग्रन्थोंमें अनेक वैकल्पिक साधन बताये गये हैं। उसी क्रममें पौराणिक शतरुद्रिय भी एकाधिक स्थलोंपर उक्त ग्रन्थोंमें दिये गये हैं। उनका महत्त्व किसी भी प्रकारसे न्यून नहीं है, यह उनकी फलश्रुतिसे स्पष्ट हो जाता है। एक पौराणिक शतरुद्रियस्तोत्र स्कन्दपुराणके माहेश्वरखण्डके कुमारिका उपखण्डके अन्तर्गत प्राप्त होता है, दूसरा महाभारतके द्रोणपर्व के अन्तर्गत दो अध्यायोंमें विन्यस्त है। अन्यान्य पुराणोंमें भी ऐसे स्तोत्रोंका अनुसन्धान किया जा सकता है। महाभारतोक्त शतरुद्रियका उपदेश पाण्डुपुत्र अर्जुनको स्वयं महर्षि वेदव्यासने दिया था, जिसका भक्तिभावसे सभी पाठ कर सकते हैं, उसी महाभारतोक्त शतरुद्रियको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—***सम्पादक**]*
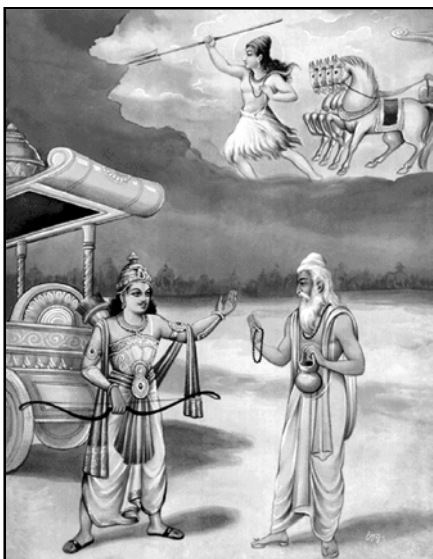
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च॥ १॥

जो रुद्र, नीलकण्ठ, कनिष्ठ (सूक्ष्म या दीप्तिमान्), उत्तम तेजसे सम्पन्न, जटाजूटधारी, विकरालस्वरूप, पिंगल नेत्रवाले कुबेरको वर देनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १॥

याम्यायाव्यक्तकेशाय सदवृत्ते शङ्कराय च।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च॥ २॥
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे॥ ३॥

जो यमके अनुकूल रहनेवाले काल हैं, अव्यक्त स्वरूप आकाश ही जिनका केश है, जो सदाचारसम्पन्न, सबका कल्याण करनेवाले, कमनीय, पिंगलनेत्र, सदा स्थित रहनेवाले और अन्तर्यामी पुरुष हैं, जिनके केश भूरे एवं पिंगल वर्णके हैं, जिनका मस्तक मुण्डित है, जो दुबले-पतले और भवसागरसे पार उतारनेवाले हैं, जो सूर्यस्वरूप, उत्तम तीर्थ और अत्यन्त वेगशाली हैं, उन देवाधिदेव महादेवको नमस्कार है॥ २-३॥

बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्त्राक्षाय मीढुषे॥ ४॥

जो अनेक रूप धारण करनेवाले, सर्वस्वरूप तथा सबके प्रिय हैं, वल्कल आदि वस्त्र जिन्हें प्रिय हैं, जो मस्तकपर पगड़ी धारण करते हैं, जिनका मुख सुन्दर है, जिनके सहस्त्रों नेत्र हैं तथा जो वर्षा करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है॥ ४॥

गिरिशाय प्रशान्ताय यतये चीरवाससे।
हिरण्यबाहवे राज्ञे उग्राय पतये दिशाम्॥ ५॥

जो पर्वतपर शयन करनेवाले, परम शान्त, यतिस्वरूप, चीरवस्त्रधारी, हिरण्यबाहु (सोनेके आभूषणोंसे विभूषित बाँहवाले), राजा (दीप्तिमान्), उग्र (भयंकर) तथा दिशाओंके अधिपति हैं, [उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है]॥ ५॥

पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः॥ ६॥

वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च॥ ७॥

बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च॥ ८॥

सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च।
शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम्॥ ९॥

उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम्।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम्॥ १०॥

कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम्।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम्॥ ११॥

वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम्।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम्॥ १२॥

महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम्।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥ १३॥

त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम्।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम्॥ १४॥

प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम्।

जो मेघोंके अधिपति तथा सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं, उन्हें नमस्कार है। वृक्षोंके पालक और गौओंके अधिपतिरूप आपको नमस्कार है॥ ६॥

जिनका शरीर वृक्षोंसे आच्छादित है, जो सेनाके अधिपति और शरीरके मध्यवर्ती (अन्तर्यामी) हैं, यजमान-रूपसे जो अपने हाथमें स्रुवा धारण करते हैं, जो दिव्यस्वरूप, धनुर्धर और भृगुवंशी परशुरामस्वरूप हैं, उनको नमस्कार है॥ ७॥

जिनके बहुत-से रूप हैं, जो इस विश्वके पालक होकर भी मूँजका कौपीन धारण करते हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों पैर हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है॥ ८½॥

कुन्तीनन्दन! तुम उन्हीं वरदायक, भुवनेश्वर, उमावल्लभ, त्रिनेत्रधारी, दक्षयज्ञविनाशक, प्रजापति, व्यग्रतारहित और अविनाशी भगवान् भूतनाथकी शरणमें जाओ॥ ९-१०॥

जो जटाजूटधारी हैं, जिनका घूमना परम श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ नाभिसे सुशोभित, ध्वजापर वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, वृषदर्प (प्रबल अहंकारवाले), वृषपति (धर्मस्वरूप वृषभके अधिपति), धर्मको ही उच्चतम माननेवाले तथा धर्मसे भी सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके ध्वजमें साँड़का चिह्न अंकित है, जो धर्मात्माओंमें उदार, धर्मस्वरूप, वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले, श्रेष्ठ आयुध और श्रेष्ठ बाणसे युक्त, धर्मविग्रह तथा धर्मके ईश्वर हैं, [उन भगवान्की मैं शरण ग्रहण करता हूँ]॥ ११-१२॥

कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेके कारण जिनका उदर और शरीर विशाल है, जो व्याघ्रचर्म ओढ़ा करते हैं, जो लोकेश्वर, वरदायक, मुण्डितमस्तक, ब्राह्मणहितैषी तथा ब्राह्मणोंके प्रिय हैं। जिनके हाथमें त्रिशूल, ढाल, तलवार और पिनाक आदि अस्त्र शोभा पाते हैं, जो वरदायक, प्रभु, सुन्दर शरीरधारी, तीनों लोकोंके स्वामी तथा साक्षात् ईश्वर हैं, उन चीरवस्त्रधारी, शरणागतवत्सल भगवान् शिवकी मैं शरण लेता हूँ॥ १३—१४½॥

नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा॥ १५॥

सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने॥ १६॥

धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च॥ १७॥

नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने॥ १८॥

नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः॥ १९॥

मातॄणां पतये चैव गणानां पतये नमः।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः॥ २०॥

अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च॥ २१॥

नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः।
स वै रुद्रः स च शिवःसोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित्।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः॥ २२॥

स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः॥ २३॥

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि तु।
मासार्धमासा ऋतवः सन्ध्ये संवत्सरश्च सः॥ २४॥

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः॥ २५॥

सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा॥ २६॥

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरा चान्या शिवा चान्या ते तनू बहुधा पुनः॥ २७॥

कुबेर जिनके सखा हैं, उन देवेश्वर शिवको नमस्कार है। प्रभो! आप उत्तम वस्त्र, उत्तम व्रत और उत्तम धनुष धारण करते हैं। आप धनुर्धर देवताको धनुष प्रिय है, आप धन्वी, धन्वन्तर, धनुष और धन्वाचार्य हैं, आपको नमस्कार है। भयंकर आयुध धारण करनेवाले सुरश्रेष्ठ महादेवजीको नमस्कार है॥ १५—१७॥

अनेक रूपधारी शिवको नमस्कार है, बहुत-से धनुष धारण करनेवाले रुद्रदेवको नमस्कार है, आप स्थाणुरूप हैं, आपको नमस्कार है, उन तपस्वी शिवको नित्य नमस्कार है॥ १८॥

त्रिपुरनाशक और भगनेत्रविनाशक भगवान् शिवको बारम्बार नमस्कार है। वनस्पतियोंके पति तथा नरपति-रूप महादेवजीको नमस्कार है॥ १९॥

मातृकाओंके अधिपति और गणोंके पालक शिवको नमस्कार है। गोपति और यज्ञपति शंकरको नित्य नमस्कार है॥ २०॥

जलपति तथा देवपतिको नित्य नमस्कार है। पूषाके दाँत तोड़नेवाले, त्रिनेत्रधारी वरदायक शिवको नमस्कार है। नीलकण्ठ, पिंगलवर्ण और सुनहरे केशवाले भगवान् शंकरको नमस्कार है॥ २११/२॥

वे ही रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही सर्वस्वरूप एवं सर्वज्ञ हैं। वे ही इन्द्र और वायु हैं, वे ही दोनों अश्विनीकुमार तथा विद्युत् हैं॥ २२॥

वे ही भव, वे ही मेघ और वे ही सनातन महादेव हैं। चन्द्रमा, ईशान, सूर्य और वरुण भी वे ही हैं॥ २३॥

वे ही काल, अन्तक, मृत्यु, यम, रात्रि, दिन, मास, पक्ष, ऋतु, सन्ध्या और सम्वत्सर हैं॥ २४॥

वे ही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वरूपी कार्यके कर्ता हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओंके शरीर धारण करते हैं॥ २५॥

सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे महादेवजी एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपोंमें वे ही विराज रहे हैं॥ २६॥

वेदज्ञ ब्राह्मण उनके दो शरीर मानते हैं, एक घोर और दूसरा शिव। ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं और उन्हींसे पुनः बहुसंख्यक शरीर प्रकट हो जाते हैं॥ २७॥

घोरा तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः।
सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः॥ २८॥

उनका जो घोर शरीर है, वही अग्नि, विष्णु और सूर्य है और उनका सौम्य (शिव) शरीर ही जल, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा है॥ २८॥

वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः।
यदत्र परमं गुह्यं स वै देवो महेश्वरः॥ २९॥

वेद, वेदांग, उपनिषद्, पुराण और अध्यात्मशास्त्रके जो सिद्धान्त हैं तथा उनमें भी जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं॥ २९॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्॥ ३०॥

पार्थ! यह स्तोत्र वेदोंके समान परम पवित्र तथा धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३०॥

सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम्॥ ३१॥

इसके पाठसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। यह पवित्र स्तोत्र सम्पूर्ण किल्बिषोंका नाशक, सब पापोंका निवारक तथा सब प्रकारके दुःख और भयको दूर करनेवाला है॥ ३१॥

चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा।
विजित्य शत्रून् सर्वान् स रुद्रलोके महीयते॥ ३२॥

जो मनुष्य भगवान् शंकरके ब्रह्मा, विष्णु, महेश और निर्गुण निराकार—इन चतुर्विध स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले इस स्तोत्रको सदा सुनता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३२॥

चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं स्मृतम्।
पठन् वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः॥ ३३॥

भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु च यः सदा।
वरान् कामान् स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः॥ ३४॥

परमात्मा शिवका यह चरित सदा संग्राममें विजय दिलानेवाला है, जो सदा उद्यत रहकर शतरुद्रियको पढ़ता और सुनता है तथा मनुष्योंमें जो कोई भी निरन्तर भगवान् विश्वेश्वरका भक्तिभावसे भजन करता है, वह उन त्रिलोचनके प्रसन्न होनेपर समस्त उत्तम कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि व्यासप्रोक्तं शतरुद्रियस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभारतमें द्रोणपर्वके अन्तर्गत व्यासप्रोक्त शतरुद्रियस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

'को जाँचिये संभु तजि आन'

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये बिष पान।
दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदाशिव सबहिं समान॥
सेवत सुलभ, उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

[विनय-पत्रिका]

परमात्माके साथ है हमारा नित्य सम्बन्ध

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

हमारे सम्बन्ध दो प्रकारके होते हैं—'लौकिक' और 'अलौकिक'। लौकिक सम्बन्ध वे हैं, जो हमारे परिवार और संसारके साथ जुड़े होते हैं और अलौकिक सम्बन्ध केवल ईश्वरके साथ होता है। जहाँ हमारे सभी लौकिक सम्बन्ध अस्थायी और अनित्य होते हैं, वहीं अलौकिक सम्बन्ध स्थायी और नित्य होता है। जबतक सब प्रकारके सुख एवं सुविधाएँ हमें प्राप्त हैं, हमारे पास धन-सम्पत्ति है, मान-सम्मान है, हमारे सम्बन्धसे लोगोंके स्वार्थोंकी पूर्ति होती है, तबतक हमसे सम्बन्ध रखनेवालोंकी कमी नहीं होती। लोग हमारे सम्बन्धका हवाला देकर गौरवका अनुभव ही नहीं करते वरन् उससे लाभ उठानेका भी प्रयास करते हैं, परंतु स्थिति जब इसके विपरीत होती है अर्थात् आपत्ति-विपत्तियाँ हमें चारों ओरसे घेर लेती हैं, हमारा वैभव नष्ट हो जाता है, पग-पगपर हमारा अपमान और तिरस्कार होता है, हमारे सम्बन्धोंके माध्यमसे काम बननेकी बजाय हमारे सम्पर्कमें आनेसे मिथ्या कलंक लगनेकी सम्भावना हो जाती है, तब अधिकांश लोग हमसे सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। कभी हमसे सम्बन्ध था, यह प्रकट होनेमें भी लज्जाका अनुभव करते हैं और सम्बन्ध छिपानेकी चेष्टा करते हैं।

महापुरुषोंका कथन है कि सृष्टिके रचयिता एकमात्र भगवान् ही ऐसे हैं, जो जीवका किसी भी अवस्थामें साथ नहीं छोड़ते। वे हमसे एक क्षणके लिये भी अलग-थलग नहीं होते। वे आत्मरूपसे, अन्तर्यामीरूपसे सदैव हमारे साथ रहते हैं। उनका अनन्त सौहार्द हमें मिलता ही रहता है, चाहे हम कितने भी पतित क्यों न हो जायँ; क्योंकि वे पतितपावन भी हैं। हमारा उनका सम्बन्ध सदा एक-सा बना रहेगा। हमारी आत्मा परमात्माका अंश है और वह कभी अपने अंशीसे दूर नहीं हो सकता। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।**' (१५।७) अर्थात् इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है। परमात्मा हमारा नित्य साथी है। कदाचित् हम अपने ऐसे नित्य साथीको पहचाननेकी भूल करते हैं। काश! प्रभुके साथ अपने नित्य सम्बन्धकी हमें स्मृति हो जाती, वह स्मृति सदा बनी रहती तो परिस्थिति भले कैसी भी क्यों न हो, हमारा जीवन दुखी न होता, इतना अस्त-व्यस्त न होता, जितना अब होता दिखायी देता है। हमें जो निराशा होती है, वह नहीं होती, जो नीरसताका बोध होता है, वह नहीं होता और जो असन्तोषका अनुभव होता है, वह भी नहीं होता।

सर्वविदित है कि हममेंसे प्रत्येककी रुचि भिन्न-भिन्न है। रुचिके अनुरूप ही हमारा उद्देश्य और कार्यक्षेत्र निर्मित और निर्धारित होता है। किसीका कार्यक्षेत्र स्वदेश-सेवाका है तो किसीका समाज-सुधारका, किसीका कार्यक्षेत्र उद्योगका है तो किसीका व्यापार-व्यवसायका। कार्य करते हुए जो लोग हमारे सम्पर्कमें आते हैं, उनके साथ हमारा एक सम्बन्ध-सा स्थापित हो जाता है। फिर परस्पर आदान-प्रदान होता है, लेन-देन होता है। प्रायः यह देखा गया है कि ऐसे सम्बन्ध स्थायी नहीं होते। ये सम्बन्ध तभीतक निभते हैं, जबतक हम अपने प्रयासमें सफल होते जाते हैं, जगत्की दृष्टिमें सफल होते दिखायी देते हैं। जैसे ही असफलता हाथ लगी अथवा लोगोंको लगा कि हमसे उन्हें इच्छित वस्तुकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी कि बस, वहीं सम्बन्धोंमें दरार आ जाती है और लोग सम्बन्ध-विच्छेद करनेपर उतारू हो जाते हैं। पहले-जैसा उत्साह और प्रगाढ़ता नहीं रहती। साथी हमारी असफलताके कारणोंपर विचार नहीं करते। वे तो बस यही देखते हैं कि सफलता हमारा साथ दे रही है या नहीं। हमारी सफलता और

असफलतापर ही सम्बन्धोंका बनना और टूट जाना निर्भर करता है। जबतक हम सफल हैं, तबतक सभीका सम्बन्ध और सहयोग मिलता है। असफल हुए नहीं कि सम्बन्ध भी दरकने लगते हैं। इस सम्बन्धमें दुर्गा-सप्तशतीमें कथा आती है कि चक्रवर्ती सम्राट् राजा सुरथका समस्त भूमण्डलपर अधिकार था, वे अपनी प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन करते थे, परंतु ऐसे धर्मप्राण सम्राट् भी जब दुर्भाग्यवश कोलाविध्वंसियोंसे पराजित हो गये तो उनके दुरात्मा मन्त्रियोंने उनकी सेना और कोषको हस्तगत कर लिया और राजा सुरथको शिकार खेलनेके बहाने अकेले ही घोड़ेपर सवार होकर घने जंगलमें स्थित मुनि सुमेधाके आश्रमपर जाना पड़ा। इस प्रकार असफलताके समय उनके अपनोंने भी उनका साथ छोड़ दिया था।

असफलताके कारण जब सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं तो उस समय हम एक विचित्र-सी स्थितिका सामना करनेके लिये विवश हो जाते हैं, अजीब-सी उधेड़-बुनमें पड़ जाते हैं, क्या करें और क्या न करें? तब हमें निराशा और हताशा घेर लेती है और हम किंकर्तव्यविमूढ़से हो जाते हैं। ऐसा इसलिये होता है; क्योंकि हमने ऐसी कल्पना नहीं की थी, परंतु वास्तविकता यह है कि ऐसा होना ही था; क्योंकि हमारे सम्बन्धोंका आधार ही अस्थायी और अनित्य था। वह एक ऐसा आधार था जो कि किसी स्वार्थ या हेतुको लेकर स्थापित हुआ था और उसकी पूर्ति न होनेपर वह टूट गया। संसारके सारे सम्बन्ध इसी प्रकार बनते-बिगड़ते रहते हैं। उनमें स्थायित्वका अभाव सदा बना रहता है। कसमे-वादे सब धराशायी हो जाते हैं और हम देखते रह जाते हैं। दूसरोंकी क्या कहें, परिवारके निकट सम्बन्धियोंके सम्बन्ध भी पल-भरमें बिखर जाते हैं।

ज्ञानीजन कहते हैं कि प्रभुके साथ हमारा जो अहैतुक नित्य सम्बन्ध है, यदि उसे हम जान लेते, उसपर भरोसा करते तो हमें निराशा हाथ नहीं लगती। संसारके सम्बन्ध-सहैतुक हैं, इसलिये उसमें सौहार्द भी नहीं है। विशुद्ध प्रेममें कोई भी हेतु नहीं होता और जहाँ विशुद्ध प्रेम नहीं, वहाँ हमारे लिये कोई अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दे, यह सम्भव नहीं। दूसरी बात यह है कि हमारा जिनसे सम्बन्ध होता है, उनकी शक्ति-सामर्थ्यकी भी एक सीमा है। उस सीमाके भीतर ही वे हमारी सहायता कर सकते हैं। तीसरी बात यह है कि उनका ज्ञान-कौशल भी देश-कालसे सीमित है। वे नहीं जानते कि विश्वमें कहाँ क्या हो रहा है, कल क्या हुआ और आनेवाले कलमें क्या होगा? उनके पास जो सीमित ज्ञान है, उसीके आधारपर ही वे हमारे साथ सम्बन्ध रखकर कार्य करते हैं। इसीलिये वे जाने कितनी बार भूल कर बैठते हैं, किंतु परमात्माके साथ तो हमारा जो सम्बन्ध है, वह अनादि है, सनातन है, पुरातन है, सदा स्थिर एकरस रहनेवाला है। उनके सम्बन्धमें कोई हेतु नहीं है। वह सम्बन्ध अत्यन्त निर्मल, असीम, प्रेमसे परिपूर्ण और नित्य है। ईश्वरकी शक्ति-सामर्थ्यकी भी कोई सीमा नहीं। वे सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ हैं। इसलिये उनसे कभी कोई तनिक-सी भी भूल नहीं होती।

प्रश्न उठता है कि जब हमारा ऐसे महामहिम प्रेममय परमात्मासे नित्य सम्बन्ध है तो फिर हम उनपर भरोसा क्यों नहीं करते? उत्तर स्पष्ट है कि हमारी इन्द्रियाँ स्वभावसे बहिर्मुखी हैं, बाहरकी ओर देखती हैं, भीतरकी ओर नहीं। हमारा मन और बुद्धि भी प्राकृत है, मायिक

है; इसलिये ये परमात्माको जान नहीं पाते। जबतक प्रभुको जानेंगे नहीं, तबतक बात नहीं बन सकती। इसलिये संत-मनीषी कहते हैं कि हमें अन्तर्मुखी बनना होगा। अभी तो अन्तर्मुख होनेकी बात तो दूर, हमारी इन्द्रियोंका प्रवाह सत्त्वमुखी भी नहीं हुआ है। हमारी इन्द्रियाँ प्रगाढ़ तमोगुणकी ओर दौड़ रही हैं। इसे रोकना होगा और मन एवं बुद्धिको भगवान्‌में लगाना होगा। तब कहीं जाकर ईश्वरकी कृपा हमपर बरसेगी। ईश्वर कृपासाध्य है। वह आग्रहसे नहीं अनुग्रहसे मिलता है। हम उसे तभी जान सकते हैं, जब वह जनाना चाहे अन्यथा प्रभुको जानना सम्भव नहीं है। हमारे प्रभु ही हमारे सर्वस्व हैं, सम्पूर्ण सृष्टिके नियन्ता हैं, नियामक हैं, पालक हैं, संचालक हैं यानी वासुदेव ही सब कुछ हैं—**'वासुदेवः सर्वम्।'** गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(१०।८)

अर्थात् मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है, इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्तिसे युक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं। महापुरुषोंका कथन है कि अज्ञानी मनुष्य ही पति, पत्नी, पुत्र, मित्र, नाते, रिश्तेदारको अपनी आत्माका एक भाग मानकर इनकी वृद्धि होनेपर प्रसन्न तथा हानि होनेपर दुखी होता है। यह सब नाते-रिश्ते तो हमें ईश्वरने सेवा करनेके लिये दिये हैं। इन्हें अपना माननेवाला तो पतनके मार्गका अनुगामी बनता है यानी चौरासीके चक्करमें घूमनेको विवश होता है। जीवका एकमात्र रिश्तेदार या सम्बन्धी तो केवल ईश्वर ही है, जिसके साथ उसका नित्य सम्बन्ध है। स्वामी रामसुखदासजी कहा करते थे कि हमें इस सम्बन्धको यह कहकर नित्य स्मरण करना चाहिये कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं।' परमात्माका अंश होनेके कारण हम उसे सर्वाधिक प्रिय हैं। वे अपनी वस्तुको सदैव एकटक देखते रहते हैं। उन्होंने हमें कभी अपनी आँखोंसे ओझल नहीं किया है। हम भले ही उन्हें भूल जायँ, पर वे हमें कभी नहीं भूलते और न कभी भुला ही सकते हैं। वे सदैव हमारे साथ रहते हैं। जिसकी जो वस्तुएँ हैं, उन्हें वह देखता ही है, सँभालता ही है। अपनी रचनासे क्या रचयिता कभी अलग या दूर हो सकता है? कदापि नहीं। हम भी परमात्माको अपना पिता मानकर हृदयसे उनका नित्य स्मरण करें, सेवन करें तो हमारा कल्याण होना निश्चित है।

जग-जीव सभी रामाश्रित हैं

(श्रीसुरेशजी शुक्ल 'मृदुल')

कलिकालमें रामका नाम महा,
शुभ कारक दोष निवारक है।
गति संसृति गूढ़ रहस्यमयी,
सद्भक्त ही मात्र विचारक है॥

जप राम-रमा जड़-जीव सदा,
सुख मूल प्रभूत सुधारक है।
जग-जीवन जन्म वृथा न करें,
प्रभु-प्रीति सदा उपकारक है॥

रामके नामका मन्त्र सुमोहक,
जाप अखण्ड है पातकहारी।
प्रीतिका पर्व है राम-महोत्सव,
पावनताकी महानता भारी॥

रूप-अनूप प्रभा मन-मानस,
कीर्ति अपूर्व प्रकाशित न्यारी।
भाव-प्रभावसे दूर मलीनता,
अन्तर-वास करे उजियारी॥

शुचि वन्दन है रघुनन्दनका,
उर पावन-भाव प्रकाशित है।
चरणार्पित मंजु-प्रसून सदा,
मन भक्ति-तरंग प्रवाहित है॥

प्रभु की कृपा-कोरसे धन्य धरा,
जग-वाटिका नित्य सुवासित है।
अवलम्ब असीम है राम-रमा,
जग-जीव सभी रामाश्रित हैं॥

रामकथा—

सीता-स्वयंवर

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

धनुर्भंग

'वत्स रामभद्र! तुम धनुषको उठकर देखो तो!' महर्षि विश्वामित्रने श्रीरामकी ओर अत्यन्त स्नेहपूर्वक देखा।

'भगवन्! आप अनुमति दें तो मैं धनुषका स्पर्श करूँ।' उठकर श्रीरामने महर्षिको मस्तक झुकाकर पूछा—'उसे ज्यासज्ज करनेका प्रयत्न करूँ?'

'अवश्य! अवश्य!' महाराज जनकने हर्ष-विह्वल स्वरमें कहा। बिना यह देखे कहा कि बात उनसे नहीं—महर्षि विश्वामित्रजीसे पूछी गयी है।

महर्षिने केवल भ्रू-संकेतसे अनुमति दे दी। भ्रूका वह संकेत था—'धनुषको तोड़ फेंको।'

महाराज जनकने, उनके कुलपुरोहितने तथा सभासदोंने अबतक धनुष-तोड़नेके लिये आनेवाले सहस्रशः नरेशोंको देखा था। उनमें बहुत-से अपने बल-विक्रमके लिये प्रसिद्ध थे, किंतु जो आते थे। उतावलीमें आते थे। अपने पौरुषका गर्व लिये आते थे और डींग मारते आते थे। आज जो शत-शत मनोभव-मनोहारी पुण्डरीकाक्ष रघुकुल-कुमार उठ खड़े हुए हैं धनुषकी ओर चलनेको—उनकी गरिमा, उनकी गम्भीरता, उनका ओज अपूर्व है। यह शोभा और शील दुर्लभ है विश्वमें।

कोई त्वरा नहीं, कोई शंका-रेखातक नहीं। श्रीराम उठे, उन्होंने पटुकातक कटिमें कस लेना आवश्यक नहीं माना। महर्षिने भी उन्हें ऐसा करनेको नहीं कहा। केवल अपना धनुष स्कन्धसे उतारकर अनुजको दे दिया उन्होंने और मंचसे उतर गये।

महाराज जनकका वात्सल्य मचल उठा। उनकी इच्छा हुई और इच्छा हुई शतानन्दजीकी भी कि कह दें—'वत्स! पटुका कटिमें लगाओ और अलकें समेट लो, किंतु मुखसे कहा नहीं गया। इसलिये भी कहनेमें संकोच हुआ; क्योंकि अभी-अभी कुमार लक्ष्मणने आवेशमें आकर डाँट दिया था। वे इस चेतावनीको भी कहीं अनावश्यक, अपमानजनक अथवा व्यंग्य न मान लें।

मंचसे उतरकर श्रीरामने घूमकर पुनः महर्षिको, मुनि-मण्डलीको मस्तक झुकाया और अपनी सहज केहरीकी समान गतिसे धनुषकी ओर चल पड़े।

अयोध्याके राजकुमार धनुष देखेंगे, यह सूचना तो राजभवनमें और पूरे नगरमें अपने-आप हो गयी, जब इतना विशाल धनुष पाँच सहस्र व्यक्ति खींचकर ले आये। इधर बहुत दिनोंसे धनुष अपने अर्चा-स्थानपर था। उसे देखने, उठाने आनेवालोंकी चर्चा समाप्त हो गयी थी मिथिलामें। आज धनुष जब पुनः रंगस्थलपर ले जाये जानेका समाचार मिला, नगरके नर-नारी कुतूहलवश एकत्र होने लगे। महाराजके अन्तःपुरको भी वहाँ आना था। इसकी सम्भावना पहलेसे थी, अतः सबके बैठनेकी व्यवस्था भी पहलेसे की गयी थी। वस्तुतः तो रंगशालाका निर्माण और वहाँ सबके बैठनेकी व्यवस्था तभी हुई जब महाराज जनकने धनुर्भंग करनेवालेको कन्यादान करनेकी प्रतिज्ञा घोषित की। इस समय तो उस उपेक्षित रंगशालाकी नवीन सज्जामात्र कल सायंकाल करनी पड़ी थी।

धनुषके रंगशालामें पहुँचनेसे पूर्व ही लोग वहाँ आ गये थे। राजसेवकोंने सबको यथायोग्य स्थानोंपर बैठाया। व्यवस्थामें कठिनाई इसलिये भी नहीं हुई; क्योंकि लोगोंको अपने वर्गके रंगशालामें बैठनेके निश्चित स्थानका पता था। इसके वे अभ्यस्त थे।

'अवधके सुकुमार अल्पवय कुमार और इतना भारी धनुष?' लोगोंके हृदय आशंकासे पूर्ण थे, किंतु निश्चित कोई नहीं था। जिन कुमारोंने सहस्र-सहस्र राक्षस खेलमें मार दिये, जिनकी पदरज पाकर पाषाणीभूता ऋषि-पत्नी परित्राण पा गयी, वे साधारण राजकुमार तो नहीं हैं। वे धनुष नहीं उठा सकते, यह कोई कैसे

निश्चित मान ले।

मनुष्यका स्वभाव प्राय: अपने अनुकूल परिस्थिति बनेगी, यही सोचनेका है। कठिन-से-कठिन, अशक्यतम स्थितियोंमें भी मनुष्य अनुकूलताकी सम्भावना कल्पित कर लेता है। सदा प्रतिकूलकी सम्भावना करनेवाले तो पूर्वजन्मके पापकर्मा, अत: नित्य दुखी रहनेवाले अशान्त व्यक्ति होते हैं। ऐसे दुर्बल मानस मिथिलामें नहीं थे।

'ये कमललोचन इन्दीवर-सुन्दर हमारी राजनन्दिनीका पाणि-ग्रहण करें तो हमारा जीवन भी धन्य हो जाय! हम भी इस सम्बन्धसे इनको अपना कह सकें।' जन-जनके हृदयकी उत्कट कामना थी। इस अभिलाषाने आशा एवं सम्भावना उत्पन्न कर दी।

श्रीराम जब धनुषकी ओर चल पड़े, सभी मिथिलाके नर-नारी आतुर हृदयसे अपने इष्टदेवोंके स्मरणमें लग गये। कोई जप कर रहा था, कोई स्तोत्रपाठ और कोई प्रार्थना—'ये कुमार पिनाक भंग करनेमें सफल हों—हमारे सम्पूर्ण पुण्योंके प्रभावको लेकर सफल हों!'

महारानी सुनयनाने आज अभी देखा श्रीरामको। उनका हृदय वात्सल्यसे व्याकुल हो उठा—'महाराज विवेकनिधि कहे जाते हैं, किंतु इस समय कहाँ सो गया उनका विवेक? वे यह क्या कर रहे हैं? उन्हें कोई रोकता क्यों नहीं? ये तो बालक हैं, अपने बाल स्वभाववश धनुष उठाने जा रहे हैं। मेरी कन्याने जब धनुष उठा लिया था, महाराज कितने असन्तुष्ट हुए थे। धनुष भारी है, कहीं उठानेपर इनके हाथसे छूटकर गिर पड़े............!

महारानी अन्त:पुरकी सखी-सेविकाओंके साथ हैं। पर्दा है नारियोंके बैठनेके स्थानपर। इस समय महाराजको कोई सन्देश भी भेजनेकी स्थिति नहीं है। वे महर्षि विश्वामित्रके समीपसे इधर आते तो उनको समीप बुलवाया जा सकता। महारानीका हृदय छटपटा रहा है। सखी—अन्त:पुरकी सबसे वृद्धा, चतुरा सखी महारानीको समझानेमें लगी है। उसका दृढ़ विश्वास है कि श्रीराम धनुर्भंग कर देंगे, किंतु महारानीका हृदय—वह वात्सल्यपूर्ण हृदय कहाँ शान्त हो रहा है।

श्रीजनकनन्दिनीकी दृष्टि लगी है—अपलक लगी है उनपर, जो स्वत: हृदयधन हो चुके; किंतु भय, चिन्ता—क्या होनेवाला है? कहीं—प्रेम सदा आशंकी होता है। अत्यन्त आकुल है उनका हृदय।

सबकी दृष्टिके एकमात्र केन्द्र श्रीराम कहीं किसी ओर नहीं देखते हैं। वे मत्तगयन्द गतिसे जा रहे हैं। जाकर उन्होंने अंजलि बाँधकर शिव-धनुषको मस्तक झुकाया और फिर मंजूषाकी परिक्रमा करके पूर्वस्थानपर आ खड़े हुए। पीछे घूमकर श्रीरामने पुन: वहींसे महर्षि विश्वामित्रको तथा मुनि-मण्डलीको मस्तक झुकाया।

'सफल-काम हो वत्स!' महर्षि याज्ञवल्क्यने श्रीरामको अपनी ओर मस्तक झुकाते देखकर स्पष्ट स्वरमें आशीर्वाद दिया।

श्रीराम धनुषकी ओर मुड़े। उन्होंने सरलतापूर्वक धनुषको उठाया और उसकी निम्नकोटि (नोक) पृथ्वीपर टिकाकर धनुषमें लगी प्रत्यंचा अपनी दाहिनी कलाईपर लपेटी। बस इतना ही कुछ स्पष्ट सबने देखा। इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, इतना शीघ्र, इतना त्वरित हुआ कि पूरा-पूरा उसे लक्षित कर पाना किसीके लिये शक्य नहीं था।

धनुष बलपूर्वक झुकाकर उसपर प्रत्यंचा चढ़ा दी गयी और श्रीरामने उसे वामहस्तमें उठाकर सम्भवत: ज्याघोष करनेके लिये प्रत्यंचा खींची। वे एक झटकेमें यह सब कर गये। उनके दक्षिण करने प्रत्यंचा झटकेसे खींची—खिंचता चला गया धनुष।

एक तीव्र प्रकाश—कहीं एक साथ सहस्त्रश: वज्रपात हों, उससे भी तीव्रतम प्रकाश और भयंकर कड़कड़ाहटकी ध्वनि। उस रंगशालामें सैकड़ों वज्रपात एक साथ होते तो भी इतना प्रचण्ड शब्द नहीं होता।

महर्षि विश्वामित्र, महर्षि याज्ञवल्क्य, शतानन्दजी, मुनि-मण्डलीके तपस्वियोंके अतिरिक्त केवल महाराज जनक और कुमार लक्ष्मण बैठे रह गये अपने आसनोंपर। शेष सब उपस्थित लोग आसनोंसे गिर गये। पूरी

मिथिलामें मानो भूकम्प आ गया। पक्षी चिल्लाते उड़ते रहे और अश्व, गज, वृषभ अपने बन्धन तोड़कर दिशाओंमें व्याकुल दौड़ने लगे।

जयमाल

'श्रीअवधेशकुमारकी जय!' 'श्रीकौशल्यानन्दनकी जय!' 'श्रीचक्रवर्ती कुमारकी जय!' 'श्रीरामकी जय!' 'जय! जय! जय! जय!' धनुर्भंगकी घोरतर ध्वनिने दो क्षणको मनुष्योंको स्तब्ध-चकित कर दिया; किंतु गगन जयनादसे गूँजने लगा। सुरोंके करोंकी सुमनवृष्टि, उनका जयघोष और उनके वाद्योंकी प्रतिध्वनिके समान प्रतिक्रिया हुई मिथिलामें। नगर वाद्य-ध्वनिसे गूँजा—गूँजता रहा। भेरी, शंख, दुन्दुभी, शृंग और करतल-ध्वनि देरतक गूँजती रही। रंगशाला सुमन-वर्षासे भर उठी। दूसरोंकी बात नहीं, अनेक मुनि एवं तापसतक अपने आसनोंपर खड़े होकर मृगचर्म अथवा उत्तरीय फहराते जयघोष करने लगे थे।

सबसे पहले मुनि शतानन्द सावधान हुए। वे उठे और लगभग दौड़ते पहुँचे श्रीरामके समीप। उन्हें हृदयसे लगाकर कहा—'वत्स रामभद्र! तुमने महाराज जनकको, मुझे, मिथिलाको कृतार्थ कर दिया। अब कृपा करके कुछ क्षण यहीं प्रतीक्षा करो।'

श्रीरामने धनुषके दोनों खण्ड मंजूषासे बाहर पृथ्वीपर फेंक दिये थे। अब उन खण्डोंमें परस्पर इतना ही सम्बन्ध रहा था कि उनके सिरे एक ही ज्यामें आबद्ध थे, जैसे वे दो अभिन्न हृदयोंके—अभिन्न तत्त्वोंके ग्रन्थि-बन्धनके प्रतीक बन गये हों।

श्रीरामने शतानन्दजीकी ओर देखा। अब उन्हें क्यों यहाँ खड़ा रहना चाहिये? किंतु मिथिलाके राजपुरोहित तो दौड़े जा रहे थे उस ओर, जहाँ महिलाओंके बैठनेकी व्यवस्था थी। अत: श्रीराम मस्तक झुकाये खड़े रहे। आदेश-पालनके अतिरिक्त उपाय नहीं था। अभी वाद्यध्वनि तथा जयनादके मध्य किसी थोड़ी दूरके व्यक्तिकी बात भी सुनायी नहीं पड़ सकती थी। अभी पुष्पवृष्टि विरमित नहीं हुई थी।

शतानन्दजीने करोंके संकेतसे सभीको रोक दिया था कि सब अपने स्थानोंपर ही रहें। कोई श्रीरामके समीप पहुँचनेकी त्वरा न करें। सचमुच शतानन्दजीने यह संकेत करनेकी त्वरा न की होती तो अनेक लोग श्रीरामको अंकमाल देने आ चुके होते। स्वयं श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम करने पहुँचनेको उत्सुक थे।

'महारानी! राजनन्दिनीको जयमाल लेकर शीघ्र भेजें!' शतानन्दजीने सावधान न किया होता तो अपार आह्लादके आवेगमें यह आवश्यक कर्तव्य महारानीको निश्चय विलम्बसे ही स्मरण आता।

जयमाल—ज्योतिर्मय रत्नोंसे निर्मित वह जयमाल प्रस्तुत तो नहीं करना था। वह तो तभी बनवाया गया जब महाराजने धनुर्भंगके साथ पुत्रीके परिणयका सम्बन्ध प्रतिज्ञाके द्वारा जोड़ दिया। महारानीने उसे बहुत बार साथ रखा है। कोई धनुष उठाने आये तो वह पेटिका महारानीके साथ सखियाँ लाती रही हैं। यह जैसे आवश्यक सामग्री थी। बहुत समयके पश्चात् वह पेटिका रंगस्थलमें लायी गयी थी।

महारानीने तो रंगशाला आते समय सखीको पेटिका उठाते देखकर कहा था—'इसे क्यों लिया है? अवधके राजकुमार तो केवल धनुष देखने आ रहे हैं!'

सखीने हँसकर कह दिया था—'महारानी! आपने उन्हें नहीं देखा, किंतु कल जब नगर-दर्शनको वे आये तो मैंने गवाक्षसे देख लिया है। यह नन्हीं पेटिका कोई धनुष है कि इसे उठानेकी बात सोचनी पड़ेगी? सोचनी भी पड़ती तो हमारी राजनन्दिनी उस धनुषको भी उठा चुकी हैं।'

'उसने धनुष उठाकर ही तो महाराजके लिये समस्या खड़ी कर दी है।' महारानी खिन्न हो गयी थीं।

'कौन जाने आज जयमाल उठाकर उस समस्याका समाधान कर दें।' सखी उल्लासमें थी—'वे राजकुमार

धनुष देखेंगे, किंतु जिनकी पद-रज मुनि-पत्नीका पाषाणत्व भंग कर सकती है, उनकी दृष्टि धनुषकी जड़ता भी तो भंग कर सकती है।'

इस समय महारानीने उस सखीकी ओर देखा, किंतु वह तो वह नन्हीं स्वर्ण-पेटिका लेकर राजनन्दिनीके समीप पहुँच चुकी थी। उसने पेटिका खोलकर जयमाला श्रीसीताके करोंमें दे दी और सखियोंको संकेत कर दिया। राजनन्दिनीको हृदयसे लगाकर उसने केवल इतना कहा—'वत्से! आवश्यक कर्तव्य है यह।'

सखियोंसे घिरी अवगुण्ठनवती भू-तनया जब राजमहिलाओंके बैठनेके स्थानसे बाहर आयी, तब कहीं लोगोंका कोलाहल विरमित हुआ। तब जयघोष रुका और तब श्रीराम समझ सके कि उन्हें मिथिलाके कुल-पुरोहितने क्यों यहाँ तनिक प्रतीक्षा करनेको कहा था।

सौन्दर्यकी मूर्तियोंके मध्य उनकी साक्षात् अधीश्वरी। पाटलवर्णी साड़ी, अरुण उत्तरीय मस्तकको ढककर अवगुण्ठन बना। वस्त्रोंमें-से झलमलाते रत्नाभरण, अवनत वदना, मृणाल सुकुमार करोंमें जयमाला सम्हाले, सखियोंसे घिरी श्रीजनकराजतनया बालमराल-गतिसे, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगीं। सखियोंके मनोहर गानका साथ देने लगे महाराजके वाद्य और सुर-वाद्य भी। दिशाएँ झूम उठीं। वायुके पद भी विरमित होने लगे।

सखियोंसे घिरी राजकुमारी जब श्रीरामके सम्मुख आकर खड़ी हुईं भुजलताओंमें जयमाल उठाये—उस शोभाका वर्णन सम्भव नहीं हुआ कभी किसीके लिये भी। श्रीरामका श्रीविग्रह ऊँचा है। यद्यपि श्रीजनकराज-तनया भी लम्बी, पतली हैं, किंतु उनके कर-पल्लव कहाँ इतना उठ जाते हैं और संकोचवश भुजाएँ कैसे पूरी उठायी जा सकती हैं। श्रीरामने मस्तक झुकाकर अवसर दिया। जयमाल उनकी ग्रीवामें पड़ी, उनके श्रीवत्सांकित वक्षपर लहरायी और गगन जयनादसे पुनः गूँजने लगा।

राजनन्दिनी उस क्षण लौट पड़ीं। श्रीराम भी मुड़े और आकर महर्षिके पदोंमें मस्तक झुकाया तो विश्वामित्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया। लक्ष्मणने उठकर अग्रजके पदोंमें प्रणाम किया। श्रीरामने उन्हें भुजाओंमें भर लिया।

राजनन्दिनी जब जाकर सखियोंके मध्य बैठ गयीं, सबसे पहले उनको उनकी अनुजाने ही छेड़ा—'जीजी! तुम तो सदा अपनी धुनमें रहती हो। कोई कुछ कहे, सुनती ही नहीं हो।'

'क्यों, मैंने कब तुम्हारी नहीं सुनी?' श्रीजानकीने चौंककर देखा।

'सखियाँ कितना तो कह रही थीं जीजाजीके चरणस्पर्शको!' उर्मिलाने उलाहना दिया—'वहाँ कोई उच्चस्वरसे पुकार सकता था, किंतु तुम लौट ही पड़ीं।'

'अब तुम उनके चरणस्पर्श कर आओ।' मन्दस्मितके साथ भू-नन्दिनीने अनुजाकी पीठपर कर रखा।

'सचमुच कर आऊँ?' उर्मिलाने बिना संकोच पूछा—'वे कितने अच्छे हैं। मेरे पूज्य तो हैं ही।'

'हाँ कर आ! लेकिन छोटे कुमारके।' सखियाँ भी हँस पड़ीं यह सुनकर।

'जीजी! तुम अब अच्छी नहीं रहीं!' उर्मिलाने लज्जावश अग्रजाके अंकमें ही मुख छिपा लिया।

'राम राम जपिये'

(श्रीओमप्रकाशजी अग्निहोत्री 'सुबोध')

कर्म का विधान सब भाँति है प्रबल मानि,
सुख-दुःख से विरत हो शान्त सम रहिये।
राम और कृष्ण के जीवन को याद करो,
दुखों के सागर को निवेरि सुख लहिये॥

धरा पर जनम पाइ दुख पाये सभी ने हैं,
कामनाएँ छाँड़ि सब सहज चित्त बसिये।
आशा, आसक्ति, अहंकार, मोह तजि 'सुबोध',
ईश अनुरक्ति करि राम-राम जपिये॥

मृत्यु क्या है ?

(श्रीरणवीरजी शास्त्री)

मृत्यु क्या है ? कुछ उदाहरणोंके द्वारा इसे समझनेका प्रयत्न करेंगे। मृत्युके उपरान्त तेरहवें दिन सभी लोग एकत्र होते हैं तो उसे लोकमें शोकसभा कहा जाता है, जबकि वह 'शोकविमोचन सभा' है। शोक तो तेरह दिन पहले हो चुका है, आज तो उस शोकसे उबरनेके लिये कुछ अच्छी-अच्छी बातें सीखनेके लिये इकट्ठे हुए हैं।

आज हम यह जाननेकी कोशिश करेंगे कि मृत्यु क्या है ? पहले यह जानें कि मृत्युका भय किसे होता है। एक व्यक्ति तो ऐसा है जो मृत्युके बारेमें कुछ जानता ही नहीं है, वह मृत्युसे नहीं डरेगा और एक व्यक्ति वह है जो मृत्युको पूर्ण रूपसे जानता है, वह भी मृत्युसे नहीं डरेगा, तो डरेगा कौन ? वह जिसे अधूरा ज्ञान है, जैसे आप और हम लोग; क्योंकि हमें मृत्युके बारेमें पूर्ण ज्ञान नहीं है। इसको एक उदाहरणसे समझिये, एक चार मासका बालक है, जो फर्शपर खेल रहा है। एक सर्प आ जाता है तो वह बालक उस सर्पको पकड़नेकी चेष्टा करेगा और पकड़ भी लेगा चूँकि वह नहीं जानता। उसी जगहपर एक सँपेरा बैठा है, वह सर्पके आ जानेपर उसे पकड़ लेगा और बन्द कर लेगा; क्योंकि वह सर्पके बारेमें पूर्ण रूपसे जानता है। वे दोनों ही सर्पसे डरेंगे नहीं, डरेगा कौन ? हम सब। अभी यहाँ सर्प आ जाय, हम सभी इधर-उधर भागेंगे; क्योंकि हमें अधूरा ज्ञान है।

एक और उदाहरण—एक सड़कपर एक व्यक्ति खड़ा है, उधरसे एक ट्रक तीव्र गतिसे आ रहा है। सड़कके किनारे खड़े लोग चिल्ला रहे हैं, हट जाओ, लेकिन वह नहीं हट रहा है। वह ट्रकको आते भी देख रहा है और उन लोगोंकी चिल्लाहट भी सुन रहा है, लेकिन हट नहीं रहा है। उसका कारण है कि वह पागल है, वह नहीं जानता कि ट्रक उसे टक्कर मार देगा और वह मर जायगा, वह मृत्यु आनेपर भयभीत नहीं होगा। जब मृत्यु आयेगी, उसे स्वीकार कर लेगा। डरेगा कौन ? हम; क्योंकि हमें अधूरा ज्ञान है।

एक बात और जरा ध्यानसे समझियेगा—एक दीपक है, उसमें बाती भी है, तेल भी भरा है। दो घण्टे जल सके इतना तेल है। दीपक जल रहा है, लेकिन एक हवाका झोंका आता है, उस दीपकको बुझा देता है तो अब ऐसेमें कोई भी व्यक्ति क्या करेगा ? हम बताते हैं उस दीपकको उठाकर किसी ऐसे स्थानपर रख देंगे कि हवाका झोंका उसे बुझा न दे और फिरसे जला देंगे। यही मृत्यु है। हमारे बीच तेरह दिन पहले जो दीपक जल रहा था, वह अचानक बुझ गया। आप कहेंगे कि वह बूढ़ा हो चुका था, उसका तेल समाप्त हो गया था, नहीं, ऐसा नहीं है, हो सकता है अभी और तेल बाकी हो, कई नौजवान लोग हमारे बीचसे चले जाते हैं, उनके अन्दर बाती भी होती है, तेल भी भरपूर होता है, वे फिर भी बुझ जाते हैं। हमारे बीचमें जो दीपक था, उसे उठाकर कहीं और जला दिया गया है। फर्क यह कि उस जलानेवाली शक्तिको उस परमपिताको हम नहीं देख पाये। 'बस, यही तो मृत्यु है।'

संसारमें यह सम्भव है कि सभी व्यक्तियोंको स्त्री, पुत्र, धन-वैभव सम्मान मिले या न मिले, लेकिन मृत्यु सभीको आयेगी, चाहे कोई गरीब हो या चाहे कोई अमीर हो। यजुर्वेदके ४०वें अध्यायके १५वें श्लोकमें कहा है—'**भस्मान्त ँ शरीरम्**' मतलब है शरीर तो अन्तमें भस्म होनेवाला ही है। यदि इस बातको समझ लिया जाय तो मृत्युसे भय नहीं लगेगा।

एक माँका पुत्र उसे छोड़कर कहीं चला जाता है, वह ५ वर्ष-१० वर्षतक नहीं आता है। अचानक दस वर्ष बाद कोई व्यक्ति आकर बताता है कि माँ! तेरा पुत्र तो कनाडामें है। वह बहुत खुश होती है, लेकिन वह व्यक्ति कहता है कि माँ! समस्या यह है कि तेरा वह पुत्र कभी तुझसे मिलेगा नहीं, वह अब कभी आयेगा नहीं। तो वह माँ कहती है कि एक बात तो बता वह ठीक तो है ? हाँ, माँ! वह बहुत मजेमें है, तो वह भी कहती है कि कोई बात नहीं, वह नहीं मिलेगा न सही, वह जहाँ है खुश है न। बस, वह खुश ही रहे। हमारे बीचसे जो व्यक्ति गया है, वह अब कभी हमें मिलेगा नहीं, वह अब कभी यहाँ आयेगा नहीं, तो क्या हम उस व्यक्तिके लिये रोने-तड़पनेकी जगह उस माँकी तरह सब्र नहीं कर सकते। यह मानकर कि वह खुश है, हम खुश नहीं हो सकते। यदि हम इस बातको समझ लें तो मृत्युसे भयभीत नहीं होंगे।

ध्यान दीजियेगा, चाणक्यने तीन बातें बतायी हैं।

यदि उन बातोंको हर समय याद रखा जाय तो मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। पहली बात जिस समय हम श्मशान जाते हैं और चिताको जलते हुए देखते हैं तो सभीके मनमें एक ही बात आती है कि यह संसार मिथ्या है, हम सभीको इसी तरह चितामें जल जाना है, सभी लोगोंको क्षणिक वैराग्य हो जाता है, लेकिन देखा यह जाता है कि जैसे ही हम लोग श्मशानसे बाहर आते हैं फिर वही मोह, माया, घर, परिवार, कारोबारकी बातें। अभी थोड़ी देर पहलेवाला वैराग्य भूल जाते हैं। दूसरे जब किसी बीमार व्यक्तिसे मिलते हैं, जो अस्पतालमें जीवन और मौतसे लड़ रहा हो, उस समयपर भी वही स्थिति होती है, जो श्मशानमें होती है। तीसरी जगह है सत्संग, जहाँपर बैठकर भी हर व्यक्तिको क्षणिक वैराग्य हो जाता है। यदि इन तीनों जगहपर होनेवाली मन:स्थितिको हम चौबीसों घण्टे हर समय बनाये रखें तो आप यह समझ लीजिये कि मोक्ष निश्चित है।

मृत्युके विषयमें एक और उदाहरण द्रष्टव्य है, एक महाशयके पास हमें एक पुस्तक दिखायी पड़ी। हमने कहा—'जरा दे सकते हैं?' उन्होंने कहा—'हाँ, क्यों नहीं?' हमने दो-चार पेज पढ़े, हमें अच्छी लगी। हमने कहा कि क्या हम इसे घर ले जा सकते हैं? उन महाशयने स्वीकृति दे दी। हम वह पुस्तक घर ले आये। हमें वह पुस्तक इतनी अच्छी लगी कि हम उसे पढ़ना तो भूल गये और इस चक्करमें लग गये कि हमें यह पुस्तक वापस न देनी पड़े। इसके लिये हमने उस पुस्तकपर लिखा हुआ नाम हटाकर अपना नाम लिख लिया। उसकी बनावट बदल दी, उसको सजाने-सँवारनेमें लग गये और हर समय इसी चक्करमें रहने लगे; कभी आलमारीमें, कभी बिस्तरके नीचे, कभी इधर, कभी उधर—हर समय यही डर बना रहता कि वे महाशय माँगने न आ जायँ; क्योंकि मन चोर है, वह तो यह बात अच्छी तरहसे जानता है कि यह पुस्तक मेरी नहीं, उस पुस्तकमें केवल चार अध्याय थे, उन्हें पढ़नेकी कोशिश नहीं की। यदि पढ़ लेते तो उस पुस्तकको रखनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती, घरवालोंको समझा दिया कि पुस्तक माँगने आये तो मना करना है, कहना पुस्तक हमारी है, हमारा नाम लिखा है। कुछ समय पश्चात् उन महाशयको याद आया कि वह पुस्तक तो शास्त्रीजी ले गये थे और माँगने चल दिये। आ पहुँचे दरवाजेपर। सभीने मन बना रखा था पुस्तक नहीं देनी है, लेकिन बात यह थी कि वह महाशयजी शास्त्रीजीसे कई गुना अधिक ताकतवर व्यक्ति थे। इसलिये वे पुस्तकको छीनकर ले गये। शास्त्रीजी बहुत छटपटाये। परिवारवाले भी रोये-चिल्लाये, पर वे तो अपनी पुस्तक ले गये—'यही मृत्यु है।'

यहाँ महाशय स्वयं परमपिता परमेश्वर हैं और वह शास्त्रीजी हम सभी लोग हैं और यह हमारा शरीर और आत्मा ही वह पुस्तक है और उसके चार अध्याय हैं—ब्रह्मचर्य-आश्रम, गृहस्थ-आश्रम, वानप्रस्थ-आश्रम और संन्यास आश्रम।

वह पुस्तक हम सभी लोगोंको उस परमपिताका स्मरण करने और इस मृत्युका रहस्य जाननेके लिये दी गयी थी, लेकिन हम सभी लोग ऐसा नहीं करते। इस कारणसे सभी लोगोंको शास्त्रीजीकी तरह ही रोना और बिलखना पड़ता है। यदि हम लोग उस परमपिताका स्मरण करें और इस मृत्युके रहस्यको जान लें तो मृत्युके समय हमें और हमारे परिवारवालोंको रोना न पड़े।

आज हर व्यक्ति इस होड़में लगा है कि मेरी दूकान, मेरा मकान पड़ोसीसे बड़ा होना चाहिये और इस बातकी पूर्तिके लिये साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी प्रकारसे वह पूरा करनेमें लगा है, क्या होगा इससे? आप सभी लोगोंने पढ़ा होगा, ईसासे २५०० से १५०० वर्ष पहले मेसोपोटामिया और हड़प्पा-मोहनजोदड़ो नामक दो सभ्यताएँ थीं। पुरातत्त्व विभागकी खुदाईसे पता चलता है कि उसके लोग भी बहुत समृद्धिशाली थे। उस समय भी इसी प्रकार मकान-दूकान हुआ करते थे, लेकिन समयके साथ सभी कुछ मिट्टीमें दब गया। हम जो कर रहे हैं, उस सबका भी ऐसा ही होगा। कुछ साथ नहीं जायगा। साथ जायगा उस परमपिताका स्मरण और उसकी राहमें हमारा किया हुआ पुरुषार्थ, सभी मकान-दूकान-गाड़ी इत्यादि यहींपर रह जायँगे।

एक आखिरी उदाहरण है—दो विद्यार्थियोंने एक विद्यालयमें दाखिला कराया, विद्यालयके प्राचार्यने दोनोंको बुलाया और दोनोंको एक-एक पुस्तक दी और कहा एक वर्ष बाद जो परीक्षा होगी, उसमें सभी कुछ इसीमेंसे आयेगा, लेकिन एक शर्त है कि आप दोनोंको परीक्षासे एक महीने पहले ये किताबें लौटानी होंगी। उनमेंसे एक विद्यार्थीने रात-दिन मेहनत की और उस पुस्तकको पूरा याद कर लिया और नोट्स भी बना लिये पर दूसरे

विद्यार्थीने पूरे वर्ष मटरगश्ती की। उसे नहीं पढ़ा। आखिर समय आया और प्राचार्यने दोनोंको बुलाया। उस पुस्तकको लौटानेके लिये कहा, तो जिस विद्यार्थीने उसे पढ़ा था, याद किया था, उसने आरामसे लौटा दिया, लेकिन जिसने वर्षभर मटरगश्ती की थी, वह प्राचार्यके आगे रोया-गिड़गिड़ाया कि मुझे दो दिनकी इजाजत और दे दो, लेकिन नियम-तो-नियम होता है। इसलिये यह बात याद रखिये कि मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, इससे पहले कि चिता जल उठे, चेत जाइये।

[प्रेषक—श्रीनीरजकुमारजी वैश्य]

संत-वाणी—

ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश

✿ वेदविद्या भारतीय संस्कृतिकी पहली प्रतीक है। वेदविद्या त्रयीविद्या कहलाती है। ऋक्, यजु: और साम ही त्रयीविद्या हैं। चतुर्थ वेद अथर्व तो त्रयीका ही उपलक्षण है। त्रयीविद्याका सम्बन्ध अग्नित्रयसे है। अग्नि, वायु और आदित्य—ये तीन तत्त्व ही विश्वमें व्याप्त हैं। पुरुष ब्रह्मके तीन पैर ऊपर हैं और एक पैर विश्व है। त्रयीविद्याके समान ज्ञान, कर्म और उपासनाका त्रिक् वेद-विद्याका दूसरा स्वरूप है, जिसके माध्यमसे वेद-विद्याकी सत्-चित् और आनन्द इन तीन विभूतियोंकी अभिव्यक्ति हो रही है। विश्वके सम्पूर्ण धर्मोंके केन्द्र-बिन्दु इस त्रिक्में ही स्थित हैं। यह त्रिक् ही और अधिक विशिष्टरूपमें गायत्री, गंगा और गौके रूपमें प्रस्फुटित हुआ है। इसलिये गायत्री, गंगा और गौके तत्त्वको ठीक-ठीक समझना ही भारतीय संस्कृतिके मूल तत्त्वोंको समझना है।

✿ गौ, गंगा और गायत्री ही भारतीय संस्कृतिके मुख्य और मूल प्रतीक हैं। गौ और गंगाकी महत्ता-उपयोगिता साधारणतया सभीको मान्य है, जो लोग उन्हें देवतारूपमें स्वीकार नहीं करते, वे भी उनकी लौकिक उपयोगिताको स्वीकार करते हैं।

✿ मूलरूपमें गंगा और गायत्री एक ही हैं। जितना क्षेत्र गायत्रीका है, उतना ही गंगाका। इसी भावको स्पष्ट करनेके लिये गंगाकी तीन धाराएँ मानी गयी हैं—पाताल-गंगा, भागीरथी गंगा और आकाशगंगा। पृथ्वीतत्त्वसे जो शक्ति प्राप्य है, वह पातालगंगा है, जलीयतत्त्वसे वही शक्ति भागीरथी है और तेज तत्त्वसे वही आकाशगंगा है, जिस प्रकार गायत्री त्रिपक्ष है, उसी प्रकार गंगा भी त्रिधारा है। ऋग्वेदमें आप: को अन्तरिक्षका देवता कहा गया है और चार सूक्तोंमें इस दिव्य देवताकी स्तुति की गयी है। अग्नि अथवा तेज तत्त्व जलमें रहनेवाला है। अग्निका जन्म जलसे बताया गया है। जलका मूल तत्त्व पार्थिव है। जो भेषजमय है और जिससे मनुष्यको जीविका भी प्राप्त होती है। इस प्रकार '**आप:**'के तीन रूप हो जाते हैं। ये ही गंगाके तीन रूप हैं।

✿ पतितपावनी गंगा, यमुना एवं सरयूमैयाके पवित्र जलका पान करो, यह अक्षय पुण्यका सूत्र है।

✿ जहाँतक हो अनन्य विश्वास और श्रद्धाके साथ अपने दैनिक कर्तव्योंके साथ-साथ भगवद्भजन अवश्य करो।

✿ स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि, दान करनेसे धनकी शुद्धि और ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है।

✿ नित्यप्रति ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर गंगादि पवित्र नदियोंके जलसे स्नानादि क्रिया सम्पन्नकर सन्ध्यावन्दन, गायत्रीजप, भजन-पूजन पाठादि नियमसे करो।

✿ तुलसी, पीपल, बिल्व, आँवलादि पवित्र वृक्षों तथा गंगादि नदियोंका नित्य दर्शन-पूजन करो।

✿ धरतीमें तुम जैसा बीज बोओगे, उसीके अनुरूप फलकी प्राप्ति होगी। अगर तुमने बबूलका पेड़ लगाया तो क्या तुम्हें आमके फल प्राप्त होंगे? कदापि नहीं। इसी प्रकार अन्त:करण भी धरतीके समान है। इसमें अगर दुर्गुणों और दुराचारोंका बीज बोओगे तो जीवन दु:ख और अशान्तिसे भर जायगा। तुम्हें सुख और शान्तिकी प्राप्ति नहीं होगी, इसलिये अपने अन्त:करणमें सदाचारके बीज लगाओ, जिससे पावन हो जाओगे। फिर अन्त:करणमें भगवत्प्रेमकी ज्योति जाग्रत् होगी, जिससे मानव-जीवनके लक्ष्यको प्राप्तकर मुक्त हो जाओगे।

[प्रेषक—श्रीसंकठासिंहजी]

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

[गताङ्क ४ पृ०-सं० ३१ से आगे]

(४) श्रीओंकारेश्वर या ममलेश्वर (अमरेश्वर)

भगवान् शिवका यह परम पवित्र विग्रह मालवा-

प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर अवस्थित है। यहीं मान्धाता पर्वतके ऊपर देवाधिदेव शिव ओंकारेश्वररूपमें विराजमान हैं। शिवपुराणमें श्रीओंकारेश्वर तथा श्रीअमलेश्वरके* दर्शनका अत्यन्त माहात्म्य वर्णित है।

ओंकारेश्वर और परमेश्वर (अमलेश्वर) ज्योतिर्लिंगके प्राकट्यकी कथा इस प्रकार है—एक समयकी बात है, नारद मुनि गोकर्ण नामक क्षेत्रमें विराजमान भगवान् शिवके समीप जा बड़ी भक्तिके साथ उनकी सेवा करने लगे। कुछ कालके बाद वे मुनिश्रेष्ठ वहाँसे गिरिराज विन्ध्यपर आये और विन्ध्यने वहाँ बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। 'मेरे यहाँ सब कुछ है, कभी किसी बातकी कमी नहीं होती है', इस भावको मनमें लेकर विन्ध्याचल नारदजीके सामने खड़ा हो गया। उसकी वह अभिमानभरी बात सुनकर अहंकारनाशक नारद मुनि लम्बी साँस खींचकर चुपचाप खड़े रह गये। यह देख विन्ध्यपर्वतने पूछा—'आपने मेरे यहाँ कौन-सी कमी देखी है? आपके इस तरह लम्बी साँस खींचनेका क्या कारण है?'

नारदजीने कहा—भैया! तुम्हारे यहाँ सब कुछ है। फिर मेरु पर्वत तुमसे बहुत ऊँचा है। उसके शिखरोंका विभाग देवताओंके लोकोंमें भी पहुँचा हुआ है। किंतु तुम्हारे शिखरका भाग वहाँ कभी नहीं पहुँच सका है।

ऐसा कहकर नारदजी वहाँसे जिस तरह आये थे, उसी तरह चल दिये, परंतु विन्ध्यपर्वत 'मेरे जीवन आदिको धिक्कार है' ऐसा सोचता हुआ मन-ही-मन संतप्त हो उठा। अच्छा, 'अब मैं विश्वनाथ भगवान् शम्भुकी आराधनापूर्वक तपस्या करूँगा' ऐसा हार्दिक निश्चय करके वह भगवान् शंकरकी शरणमें गया। तदनन्तर जहाँ साक्षात् ओंकारकी स्थिति है, वहाँ प्रसन्नतापूर्वक जाकर उसने शिवकी पार्थिवमूर्ति बनायी और छः मासतक निरन्तर शम्भुकी आराधना करके शिवके ध्यानमें तत्पर हो वह अपनी तपस्याके स्थानसे हिलातक नहीं। विन्ध्याचलकी ऐसी तपस्या देखकर पार्वतीपति प्रसन्न हो गये। उन्होंने विन्ध्याचलको अपना वह स्वरूप दिखाया, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। वे प्रसन्न हो उस समय उससे बोले—'विन्ध्य! तुम मनोवांछित वर माँगो। मैं भक्तोंको अभीष्ट वर देनेवाला हूँ और तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ।'

विन्ध्य बोला—देवेश्वर शम्भो! आप सदा ही भक्तवत्सल हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह अभीष्ट बुद्धि प्रदान कीजिये, जो अपने कार्यको सिद्ध करनेवाली हो।

भगवान् शम्भुने उसे वह उत्तम वर दे दिया और कहा—'पर्वतराज विन्ध्य! तुम जैसा चाहो, वैसा करो।' इसी समय देवता तथा निर्मल अन्तःकरणवाले ऋषि वहाँ

* द्वादशज्योतिर्लिंगोंमें ओंकारेश्वर तो है ही, परंतु उसके साथ अमलेश्वरका भी नाम लिया जाता है। वस्तुतः नाम ही नहीं—इन दोनोंका अस्तित्व भी पृथक्-पृथक् है। अमलेश्वरका मन्दिर नर्मदाके दक्षिण किनारेकी बस्तीमें है। पर इन दोनों ही शिव-रूपोंकी गणना प्रायः एकमें ही की गयी है। कहा जाता है कि एक बार विन्ध्यपर्वतने पार्थिवार्चनसहित ओंकारनाथकी छः मासतक विकट आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवजी प्रकट हुए। उन्होंने विन्ध्यपर्वतको मनोवांछित वर प्रदान किया। उसी समय वहाँ पधारे हुए देवों एवं ऋषियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने 'ॐकार' नामक लिंगके दो भाग किये। इनमेंसे एकमें वे प्रणवरूपसे विराजे, जिससे उनका नाम ओंकारेश्वर पड़ा तथा पार्थिवलिंगसे सम्भूत भगवान् सदाशिव परमेश्वर, अमरेश्वर या अमलेश्वर नामसे प्रख्यात हुए।

आये और शंकरजीकी पूजा करके बोले—'प्रभो! आप यहाँ स्थिररूपसे निवास करें।'

देवताओंकी यह बात सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और लोकोंको सुख देनेके लिये उन्होंने सहर्ष वैसा ही किया, वहाँ जो एक ही ओंकारलिंग था, वह दो स्वरूपोंमें विभक्त हो गया। प्रणवमें जो सदाशिव थे, वे ओंकार नामसे विख्यात हुए और पार्थिवमूर्तिमें जो शिव-ज्योति प्रतिष्ठित हुई, उसकी परमेश्वर संज्ञा हुई (परमेश्वरको ही अमलेश्वर भी कहते हैं)। इस प्रकार ओंकार और परमेश्वर—ये दोनों शिवलिंग भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले हैं।

प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजा मान्धाताने, जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं तथा जो स्वयं बड़े तपस्वी और यज्ञोंके कर्ता थे, इस स्थानपर घोर तपस्या करके भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था। इसीसे इस पर्वतका नाम मान्धाता-पर्वत पड़ गया।

मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पूर्व दो कोठरियोंमेंसे होकर जाना पड़ता है। भीतर अँधेरा रहनेके कारण सदैव दीप जलता रहता है। ओंकारेश्वर-लिंग गढ़ा हुआ नहीं है—प्राकृतिक रूपमें है। इसके चारों ओर सदा जल भरा रहता है। इस लिंगकी एक विशेषता यह भी है कि वह मन्दिरके गुम्बजके नीचे नहीं है। शिखरपर ही भगवान् शिवकी प्रतिमा विराजमान है। पर्वतसे आवृत यह मन्दिर साक्षात् ओंकारस्वरूप ही दृष्टिगत होता है। कार्तिक-पूर्णिमाको इस स्थानपर बड़ा भारी मेला लगता है।

(५) श्रीकेदारेश्वर

केदारनाथ पर्वतराज हिमालयके केदार नामक

शृंगपर अवस्थित हैं। शिखरके पूर्व अलकनन्दाके सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वारसे लगभग १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील उत्तर है। भगवान् विष्णुके अवतार नर-नारायणने भरतखण्डके बदरिकाश्रममें तप किया था। वे नित्य पार्थिव शिवलिंगकी पूजा किया करते थे और भगवान् शिव नित्य ही उस अर्चालिंगमें आते थे। कालान्तरमें आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। उन्होंने नर-नारायणसे कहा—'मैं आपकी आराधनासे प्रसन्न हूँ, आप अपना वांछित वर माँग लें।' नर-नारायणने कहा—'देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो आप अपने स्वरूपसे यहीं प्रतिष्ठित हो जायँ, पूजा-अर्चाको प्राप्त करते रहें एवं भक्तोंके दु:खोंको दूर करते रहें।' उनके इस प्रकार कहनेपर ज्योतिर्लिंगरूपसे भगवान् शंकर केदारमें स्वयं प्रतिष्ठित हो गये। तदनन्तर नर-नारायणने उनकी अर्चना की। उसी समयसे वे वहाँ 'केदारेश्वर' नामसे विख्यात हो गये। 'केदारेश्वर' के दर्शन-पूजनसे भक्तोंको मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है।

सत्ययुगमें उपमन्युजीने यहीं भगवान् शंकरकी आराधना की थी। द्वापरमें पाण्डवोंने यहाँ तपस्या की।

केदारनाथमें भगवान् शंकरका नित्य-सान्निध्य बताया गया है और यहाँके दर्शनोंकी बड़ी महिमा गायी गयी है।

संत-चरित—

मामा प्रयागदासजी

जनकपुरमें एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी, लगभग सवा दो सौ वर्ष पूर्व। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था प्रयागदत्त। बालक प्राय: पूछता—'माँ! क्या मेरे और कोई नहीं है? जनकपुरकी स्त्रियाँ श्रीजानकीजीको अपनी पुत्री या बहन मानती हैं। वह ब्राह्मणी कहती—'बेटा! तुम्हारे एक बहन है। वह अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजके राजकुमारको ब्याही है।' बालक कहता—'मैं बहनके पास जाऊँगा।' माता कहती—'कुछ बड़े होनेपर जाना।'

बालकके मनपर अपने बहन-बहनोईका संस्कार पूरी तरह बैठ गया। कुछ बड़े होते ही उसने अयोध्या जानेकी हठ पकड़ ली। ब्राह्मणी भक्ता थी। उसने सोचा—'मिथिलेशराजकुमारी क्या अपने इस अबोध भाईकी उपेक्षा कर सकती हैं?' उस बेचारीके पास घरमें तो कुछ था नहीं। माँगकर थोड़ेसे चावलके कण ले आयी। उन्हें पीसकर उनके मीठे मोदक बना दिये। ऐसे मोदकोंको मिथिलामें 'कासार' कहते हैं। उनको एक कपड़ेमें बाँधकर पुत्रको दिया और कहा—'ये अपनी बहन और जीजाजीको दे देना।' लड़केको मार्गमें खानेके लिये उसने सत्तू दे दिये।

बालक प्रयागदत्त किसी प्रकार कुछ दिनमें अयोध्या पहुँचे। यहाँ पूछनेपर भी कोई उनके चक्रवर्ती बहनोईका पता नहीं बतलाता था। जिससे पूछते, वही हँस देता। बहुत परेशान हुए। थककर मणिपर्वतके पास सहस्त्रशीर्षा मन्दिर (यह आजकल मस्जिद है)-के पास घने पेड़ोंके मध्यमें एक टीलेपर बैठ गये। बहुत थक गये थे। बहनोईपर बहुत अप्रसन्न हो रहे थे। कह रहे थे—'पता नहीं कहाँ चला गया? अब उसे कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ?'

भला, कोई उन चक्रवर्ती-राजकुमारको कहाँ ढूँढ़े। परंतु जो सचमुच उन्हें ढूँढ़ता है, ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ वे उसे न मिल जायँ। प्रयागदत्तने देखा कि खूब बड़ा एक सफेद हाथी उनके सामने टीलेपर कहींसे आ गया है। उसपर सोनेकी रत्नजटित अम्बारी पड़ी है। हाथी बैठ गया और उसमेंसे बहनोईके साथ बहन उतर पड़ी। किसीको कोई परिचय देना या पूछना नहीं पड़ा। जैसे ये सदाके परिचित ही हों। श्रीजानकीजीने पूछा—'भैया! माताजीने मेरे लिये कुछ भेजा है?'

भैया तो हक्के-बक्के देखते ही रह गये। कुछ देरमें सावधान होकर पोटली देते हुए बोले—'मैंने तो तुमलोगोंको बहुत ढूँढ़ा। कोई तुमलोगोंका पता नहीं बताता था।' पोटलीमेंसे श्रीकिशोरीजीने दो कासार ले लिये और शेष प्रयागदत्तको खानेके लिये दे दिया। कहा—'भैया! तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ। हमलोग ऐसे स्थानपर रहते हैं कि सब लोग हमारा पता नहीं जानते। अब तुम घर लौट जाओ। मातासे कहना कि हम सब बड़े आनन्दमें हैं।' वे हाथीपर बैठ गये। हाथी वनमें जाकर अदृश्य हो गया।

प्रयागदत्त बहन-बहनोईके वियोगमें मूर्छित हो गये। कुछ देरमें कुछ चेतना आयी। उसी समय एक संत उधरसे निकले। पास जाकर उन्होंने देखा कि एक सुन्दर बालक भूमिपर पड़ा तड़प रहा है। प्रयागदत्तको किसी प्रकार वे अपनी गुफापर ले आये। स्वस्थचित्त होनेपर प्रयागदत्तने सब बातें बतायीं। एक घड़ी रात गये दो स्त्रियाँ आयीं और उन महात्माजीको दो थाल व्यंजनोंसे भरे देकर उन्होंने कहा—'आज हमारे यहाँ पूजा हुई है। आपके लिये यह प्रसाद लायी हैं। अभी इसे ले लीजिये, थाल सबेरे चले जायँगे।' थाल देकर वे शीघ्रतासे चली गयीं? दोनों थाल कमलके पत्तोंसे ढके थे। पत्ते हटानेपर महात्माजी तो चकित रह गये। स्वर्णके वे थाल जगमग कर रहे थे। महात्माजीने समझ लिया कि जगज्जननीने अपने भाईकी पहुनाई की है।

वह दिव्य भोग प्रयागदत्तके कारण महात्माजीको भी प्राप्त हुआ। प्रात: थाल लेने तो कौन आनेवाला था। महात्माजीने प्रयागदत्तको थाल देना चाहा तो वे बोले—

'मेरी माँ मुझे घरसे ही निकाल देगी, यदि मैं बहनकी चीज ले जाऊँ। वह कन्याकी वस्तु कैसे लेगी?' बाबाजी भी सच्चे विरक्त थे। उन्होंने थालोंको गणेशकुण्डमें फेंक दिया। प्रयागदत्त घर पहुँचे। पुत्रका समाचार सुनकर माता चकित रह गयी। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी।

इस घटनाके एक वर्ष बीतनेपर प्रयागदत्तकी माता परमधाम चली गयीं। पासके एक ग्रामके सम्पन्न ब्राह्मण इनके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेको उत्सुक थे। उनके कोई पुत्र नहीं था, अतः प्रयागदत्तको वे अपने ही घर रखना चाहते थे, लेकिन प्रयागदत्तको किसीके धनका मोह कहाँ था। उनके मनमें तो वे दिव्य बहन-बहनोई बस गये थे। संसारमें कोई वस्तु आँख उठाकर देखनेयोग्य भी उन्हें नहीं जान पड़ती थी। वे घर छोड़कर सीधे अयोध्याको चल पड़े।

अयोध्या पहुँचकर प्रयागदत्तकी अद्भुत दशा हो गयी। शरीरकी सुधि ही भूल गयी। उन्हें बहन-बहनोईके दर्शनोंके लिये वे व्याकुल हो गये। जिस टीलेपर पहले दर्शन हुए थे, कुछ देर वहीं जाकर प्रतीक्षा करते रहे। उसके बाद कुंजों और झाड़ियोंमें ढूँढ़ते हुए भटकने लगे। इसी दशामें पूर्व-परिचित संत त्रिलोचन स्वामी इन्हें मिले। महात्माजीने इन्हें पहचाना और अपने आश्रमपर ले आये।

श्रीत्रिलोचन स्वामीजीके सत्संगका अपूर्व प्रभाव पड़ा। दूसरे दिन उन्हींसे दीक्षा ग्रहण करके अब ये प्रयागदास हो गये। गुरुने इन्हें लँगोटी-अँचला प्रदान किया। उसके बाद तो प्रयागदासजीकी स्थिति बहुत ही ऊँची हो गयी। वे वन-बीहड़में कहाँ घूम रहे हैं, सो उन्हें कुछ पता नहीं। किसीने खिला दिया तो खा लिया, जल पिला दिया तो पी लिया। केश बिखरे हैं, शरीर धूलिसे भरा है। कहीं खड़े हो गये तो घंटों खड़े हैं। किसी वस्तुकी ओर दृष्टि गयी तो उसीको देख रहे हैं एकटक।

जगन्माता भगवती लक्ष्मीके भाई होनेसे चन्द्रदेव समस्त संसारके मामा लगते हैं। अयोध्यामें श्रीवैदेहीके भाई ये प्रयागदासजी भी बच्चोंके मामा ही तो हैं। पता नहीं किसने सिखा दिया कि सभी बच्चे इन परमहंसको 'मामा-मामा' कहने लगे। ये परमहंस मामा मत्तगजेन्द्रकी भाँति झूमते हुए अयोध्याकी गलियोंमें घूमते रहते थे।

एक बार प्रयागदासजीको श्रीरामकी वन-लीलाका बोध हुआ। कहने लगे—'देखो! अपने तो गया ही, साथमें मेरी सुकुमारी बहनको भी बीहड़ वनमें ले गया।' अब आपको एक धुन सवार हुई। कोई पैसे देता तो ले लेते। कुछ दिनोंमें पर्याप्त पैसे एकत्र हो जानेपर तीन जोड़ी जूते बनवाये, जितने बढ़िया बनवा सकते थे। तीन पलंग ऐसे बनवाये छोटे, बड़े कि एकके पेटमें एक रखा जा सके। तीनों पलंगोंके लिये तीन गद्दे बनवाये। अब एकपर एक क्रमशः तीनों पलंग रखकर उनपर तीनों गद्दे और तीनों जोड़ी जूते रख लिये और यह सब सामान सिरपर उठाकर चित्रकूट चल पड़े। जहाँ-जहाँ मार्गमें गड्ढे, कुश, काँटे, कंकड़ मिलते, वहाँ अपने बहनोईको वे कोसते जाते थे।

चित्रकूट पहुँचकर स्फटिकशिलाके पास प्रयागदासजीने तीनों पलंग बिछाये। उनपर गद्दे डाल दिये। उनके नीचे एक-एक जोड़ी जूते रख दिये और अब बहन-बहनोईको ढूँढ़ने लगे। जब बहुत ढूँढ़ चुके, तब बोले—'देखो! छिप गया न। जान गया कि प्रयागदास आ गया है।' लौटकर देखते हैं तो इनके पलंगपर श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकीजी विराजमान हैं। दौड़कर सबके चरणोंमें जूते पहनाये और रामजीसे उलाहना देते हुए बोले—'तुम

इस जंगलमें क्यों चले आये? मेरी सुकुमारी बहनको क्यों साथ ले आये? इस बीहड़ वनमें तुमलोग रहते कैसे हो?' श्रीजानकीजीने कहा—'भैया! मैं तो स्वयं आयी। ये तो मुझे लाते ही नहीं थे।' प्रयागदासजीने कहा—'अच्छा, ठीक है। अब हम तुम्हारे साथ-साथ रहेंगे और पलंग ले चला करेंगे।'

श्रीरघुनाथजीने कहा—'भाई! हमारी वन-यात्राका नियम है कि हम तीन ही साथ रहते हैं। चौथे किसीको साथ नहीं रखते। पलंगपर कभी हम बैठते नहीं, आज तो तुम्हारी प्रसन्नताके लिये बैठ गये। अब तुम इनको अयोध्या ले जाओ। तुम इनको अपने काममें लोगे तो हमको बड़ा सुख मिलेगा।'

श्रीजानकीजीने भी इन्हें आश्वासन देकर लौट जानेको कहा। सिरपर फिर पूर्ववत् पलंग और गद्दे रखकर बेचारे लौट पड़े। मन-ही-मन कहते जाते थे—'इनको किसीने कुछ कहा नहीं, ये सब आप ही वनमें आये हैं। सोनेका महल काटता है, वन अच्छा लगता है। बहन तो भोली-भाली है। वह जो कहता है, वही करती है। साथ-साथ चली आयी। हरे-भरे पेड़, लताएँ, मृग देखती है, खुश हो जाती है। किसी दिन बाघ देखेगी तो जानेगी! मुझे भी साथ नहीं लिया। समझता है कि प्रयागदास साथ रहेगा तो इसकी बहन सचेत हो जायगी। अयोध्या लौटनेको कहेगी।' इस प्रकार खीझते, बकते वे अयोध्या लौट आये।

अयोध्या लौटकर उन्होंने एक नीमके नीचे खाट बिछायी, उसपर गद्दे डाले और उसपर स्वयं आसीन होकर अपनी मस्तीमें गाने लगे—

नीमके नीचे खाट बिछी है, खाटके नीचे करवा।
प्रागदास अलमस्ता सोवै, रामललाका सरवा॥

प्रयागदासजीकी अलमस्तीका क्या पूछना! वे निखिल-ब्रह्माण्डनायकके साले जो ठहरे। उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी सकल क्लेशहारिणी महाशक्ति उनकी बहन हैं। उनकी मस्ती अनन्त, अखण्ड, नित्य नूतन है। उनकी वाणियोंमें उस मस्तीकी एक झलक पायी जाती है।

अर्चन

(श्रीमती डॉ० उर्मिला किशोरजी)

हे प्रभु! मानव ने अर्चन को, बनवाये हैं मन्दिर अनेक।
जो एक-एक से बढ़कर हैं, वे शिल्प-कला की भव्य रेख॥

कुछ में बैठायी मूर्ति, प्रभो! जो सुन्दर है, प्रतीक प्रभु का।
है साज-बाज अनुपम सुन्दर, हरता रहता है मन सबका॥

हे! परम कृपालु! बसा है तू, उन भव्य विशाल मन्दिरों में।
षोडश उपचार सहित पूजन, लेता है अपने भक्तों से॥

उनके भवनों में भी बैठा, तू सुन्दर प्रतिमा-विग्रह में।
उनकी भी भाव-भक्ति को तू, स्वीकार कर रहा अर्चन में॥

अक्षत, रोली, चन्दन, दीपक, के बिन पूजें जो जन मन से।
उनकी भी मानस पूजा को, तू लेता है, हे! प्रभु सुख से॥

तू भाव भक्ति का भूखा है, तू प्रेम-सुधा का प्यासा है।
जो प्रेम भक्ति से भजते हैं, उनका अर्चन ही भाता है॥

तुझ निराकार निर्गुण के हित, बनवाये हैं साकार भवन।
मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर हैं, श्री गुरुद्वारे हैं, पूजास्थल॥

है व्याप्त वहाँ भी मेरा प्रभु, लेता वन्दन, अर्चन सबका।
जो जिस भी भाव पूजता है, देता तू वैसा फल उसका॥

तू निराकार साकार प्रभो! निर्गुण भी, सदा सगुण भी है।
प्रतिमा विग्रह में अर्चन ले, मन-मन्दिर में तू बसता है॥

सर्वत्र व्याप्त है, परम प्रभो! सब जीवों में तू बैठा है।
तू है प्रणम्य सब रूपों में, तू सबका वन्दन लेता है॥

यह विनत निवेदन है प्रभु से, मुझ को ऐसी दृढ़ मति दे दे।
तेरा ही रूप चराचर है, तुझ को सब जीवों में देखें॥

जब तू ही है सब जीवों में, सब प्रेम-पात्र हैं, माननीय।
सब सुखी रहें, तू हो प्रसन्न, सब में अर्चित तू अर्चनीय॥

दु:ख है क्या ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

वास्तवमें कामनाओंकी अपूर्ति दु:ख है और कामनाओंकी पूर्ति सुख है। सुख-दु:ख परिस्थितिमात्र है—अनुकूल परिस्थिति सुख है और प्रतिकूल परिस्थिति दु:ख है। यहाँ चर्चा केवल दु:खकी की जा रही है।

हम सभीके जीवनमें किसी-न-किसी अंशमें कभी दु:ख अनिवार्य रूपसे आता ही है, इसलिये यह प्रश्न उठता है कि आखिर दु:ख है क्या? जब वह हमारे जीवनमें आता है तो हम विह्वल हो जाते हैं, अधीर होते हैं और अपनेको अभागा कहते हैं, भाग्यको कोसते हैं या ईश्वरको कोसते हैं—उन्हें निष्ठुर और हृदयहीन कहते हैं।

परंतु भाग्य स्वयंमें तो कुछ है नहीं। हमारे कर्मोंसे प्रारब्ध कहें या भाग्य कहें, बनता है। इसलिये भाग्यका क्या दोष है? दोष तो हमारा और हमारे कर्मोंका ही है।

कभी-कभी लोग ऐसा भी कहते हैं कि हमने तो जाने-अनजाने कोई गलत कार्य नहीं किया, किसीको सताया नहीं, तो फिर हमारे साथ ऐसा क्यों हुआ? यहाँ हमसे भूल हो जाती है कि हमारा प्रारब्ध केवल इसी जन्मके कर्मोंका फल नहीं, बल्कि पूर्वके जन्म-जन्मान्तरके संचित कर्मोंका फल है। उसीके अनुसार अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ हमारे जीवनमें आयेंगी ही।

यदि हम दु:खको ईश्वरद्वारा प्रदत्त सजा कहें, तो वह भी उचित नहीं है। ईश्वरने अपनी मौजमें सृष्टि बनायी और उसका एक विधान बना दिया। उसी विधानसे समस्त सृष्टि संचालित हो रही है। प्रभु मंगलकारी हैं और उनका विधान भी मंगलमय है—इसलिये न तो उन्हें दोष दे सकते हैं और न ही उनके विधानको।

कुछ लोग सुख और दु:खको कर्मोंका फल मानते हैं। परंतु वास्तवमें कर्मोंका फल सुख-दु:ख नहीं है। कर्मोंके फलके रूपमें तो परिस्थिति प्राप्त होती है। उनमें सुख और दु:ख तो मनुष्यके भावानुसार होते हैं।

'विवेकशील मनुष्य भयंकर परिस्थितिमें दुखी नहीं होता अपितु उसको अपनी उन्नतिका हेतु समझकर उसका सदुपयोग करता है तथा सब प्रकारकी परिस्थितियोंको परिवर्तनशील, अनित्य और अपूर्ण समझकर परिस्थितियोंसे ऊपरका जीवन प्राप्त करनेके लिये, उनसे असंग हो जाता है।'

जीवनमें दु:ख आया और उससे हम विकल हो गये, अधीर हो गये, अपनेको अभागा कहने लगे और ईश्वरपर दोष मढ़ने लगे तो यह 'दु:खका भोग' है और सृष्टिका अनिवार्य स्वरूप समझकर सजग और सचेत हो जाते हैं तो इसे 'दु:खका प्रभाव' कहा है। अनिवार्य स्वरूप यों कि उदाहरणके लिये यदि किसीका संयोग है तो आगे-पीछे किसी-न-किसी समय वियोग होगा ही। किसीका शरीर अमर नहीं होता। सृष्टिमें जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका नाश भी होता ही है।

यदि दु:खके भोगी हैं तो दु:ख अभिशाप है। यदि उसके प्रभावको अपनाते हैं तो वह वरदान है। इससे हमारा उत्तरोत्तर विकास होता है और हम सुख-दु:खसे अतीत जीवनमें प्रवेश पाते हैं। दु:खके मांगलिक पक्षको 'दु:खका प्रभाव' कहा है।

इसे सुनकर सामान्यत: हम चौंकेंगे और कहेंगे कि दु:ख वरदान या मांगलिक कैसे हो सकता है? परंतु है यह सत्य।

जब कोई दु:खको आनेसे रोक नहीं सकता, वह जब आना है तब आयेगा ही, कोई बच नहीं सकता, तो बुद्धिमत्ता इसीमें है कि दु:खके प्रभावको अपनाया जाय।

[प्रस्तुति—साधन-सूत्र : श्रीहरिमोहनजी]

गोभक्त रामसिंह

(मुखिया श्रीविद्यासागरजी)

(१)

सबलगढ़ तहसीलके फाटकपर रहीम सिपाही बैठा था। तबतक भीतरसे रामसिंह सिपाही एक रोटी और उसीपर कुछ खीर रखे बाहर निकला।

रहीम—कहो रामसिंह! यह रोटी और खीर कहाँ लिये जा रहे हो?

रामसिंह—यह 'अग्रासन' है।

रहीम—इसके क्या मानी?

रामसिंह—हमलोग जब रोटी बनाते हैं, तब पहली रोटी गोमाताके लिये ही बनाते हैं। उसको 'अग्रासन' कहा जाता है।

रहीम—तुम रोटी खा चुके?

रामसिंह—पहले गोमाताको खिला लूँगा, तब कहीं मैं चौकेमें पैर रखूँगा।

रहीम—तुम गायको माता मानते हो?

रामसिंह—माता! माता ही नहीं, जगन्माता! तुम्हारे मुसलमान धर्ममें भी कहा है कि यह पृथ्वी गायके सींगपर रखी है।

रहीम—तुम्हारा इष्टदेव कौन है? तुम किसकी पूजा करते हो?

रामसिंह—मेरी इष्टदेवी गाय है। मैं गायकी ही पूजा करता हूँ। बैतरनीकी नाव वही है।

रहीम—आज तुम्हारी गोभक्ति देखी जायगी!

रामसिंह—कैसे?

रहीम—तुम जानते हो कि आज ईद है।

रामसिंह—जानता हूँ, फिर?

रहीम—यह जानते हो कि इस समय तहसीलदार, नायब तहसीलदार, थानेदार, दीवान और कई सिपाही मुसलमान हैं।

रामसिंह—यह भी जानता हूँ। फिर?

रहीम—इस तहसीलके अहातेमें ही थाना भी है, यह मालूम है?

रामसिंह—मालूम है। फिर?

रहीम—तहसील और थानेके बीचमें जो आँगन है, उसीमें गोकुशी की जायगी।

रामसिंह—किस समय?

रहीम—रातके बारह बजे।

रामसिंह—ग्यारह बजेसे मेरा पहरा है।

रहीम—तब तो तुम अपनी आँखोंसे, अपनी गोमाताको जबह होते देखोगे।

रामसिंह—यह बात सब अहलकारोंने पास कर दी है कि तहसीलमें गोकुशी हो?

रहीम—जी हाँ। ठाकुर साहब! सब अफसर मुसलमान हैं। यह बात तय हो चुकी है।

रामसिंह—मेरे सामने गोकुशी हो, यह बात असम्भव है। नामुमकिन है रहीम!

रहीम—मैं खुद अपने हाथसे गायके गलेपर छुरी चलाऊँगा।

रामसिंह—मगर सिरपर कफन बाँधकर आना।

रहीम—देखूँगा कि तुम क्या करते हो?

(२)

रातके ग्यारह बजे रामसिंह सिपाही वरदी पहनकर और हाथमें भरी हुई दुनाली लेकर खजानेका पहरा देने लगा। वहाँपर बारह बन्दूकें और भी रखी थीं। पाँच गारदके सिपाहियोंकी और सात थानेके सिपाहियोंकी। सभी भरी हुई थीं और दुनाली थीं। आधा घण्टेके बाद एक जवान और सुन्दर गायको लेकर रहीम आया। उसने आँगनके एक खूँटेपर गाय बाँध दी और छुरीकी धार देखने लगा।

आँगनभरमें कुर्सियाँ बिछायी गयीं। तहसीलदार, नायब तहसीलदार, थानेदार और दीवानजी आकर उन कुर्सियोंपर बैठ गये। शहरके कुछ धनी, मानी, रईस मुसलमान भी आकर बैठ गये। सबलोग चौदहकी संख्यामें थे। सात मुसलमान सिपाही पीछे खड़े थे। एक मौलवीने उठकर जबहकी दुआ पढ़ी। छुरी लेकर रहीम आगे बढ़ा।

(३)

रामसिंह—खबरदार रहीम! खबरदार!

रहीम—क्या बकते हो?

रामसिंह—चनेके धोखे मिर्च मत चबाना।

रहीम—चुप रहो।

रामसिंह—तहसीलदार साहब! यह तहसील केवल मुसलमानोंकी तहसील नहीं है। इस तहसीलमें हिन्दूलोगोंका भी साझा है।

तहसीलदार—इसका मतलब?

रामसिंह—मतलब यह कि तहसीलके भीतर गोकुशी नहीं हो सकती।

तहसीलदार—मेरा हुक्म है।

रामसिंह—आपका हुक्म कोई चीज नहीं। कलक्टरका हुक्म दिखलाइये।

तहसीलदार—अपनी तहसीलका मैं ही कलक्टर हूँ। तहसील सबलगढ़का मैं जार्ज पंचम हूँ। समझे?

रामसिंह—चाहे आप साक्षात् खुदा ही क्यों न हों, पर मेरे सामने ऐसा हरगिज नहीं होगा।

थानेदार—होगा, होगा और बीच खेत होगा। हथियार रख दो और निकल जाओ तहसीलके बाहर।

रामसिंह—मेरा हथियार कौन छीन सकता है?

थानेदार—मैं!

रामसिंह—आइये! छीनिये आकर!

दीवान—क्या तुम्हारी आफत आ गयी है रामसिंह! अपने अफसरसे ऐसी नाजायज गूफ्तगू!

रामसिंह—अफसर! किस बेवकूफने इनको अफसर बनाया? पब्लिकका दिल दुखाना अफसरका काम नहीं है।

थानेदार—रहीम! अपना काम करो! काफिरको बकने दो। रहीमने गायके पास जाकर ज्यों ही छुरा ऊँचा किया, त्यों ही रामसिंहने दनसे गोली चला दी, रहीम मरकर गिर पड़ा।

थानेदार—पकड़ो, पकड़ो!

रामसिंहने दूसरी गोली थानेदारकी छातीपर रसीद की। 'हाय' कहकर थानेदार भी वहीं ढेर हो गये।

तहसीलदार उठकर भागने लगे। रामसिंहने खाली बन्दूक वहीं डाल दी और लपककर दूसरी भरी दुनाली उठा ली।

रामसिंह—कहाँ चले जार्ज पंचम! जरा अपनी कलक्टरीकी चाशनी तो चख लो।

इतना कहकर रामसिंहने घोड़ा दबाया। तहसीलदारकी खोपड़ीमें गोली लगी और वे वहीं ढेर हो गये।

उसके बाद भगदड़ शुरू हुई। मगर रामसिंहको विराम कहाँ, तड़ातड़ गोली चल रही थी, निशाना अचूक था। ग्यारह आदमी जानसे मारे गये।

इसके बाद रामसिंहने गोमाताके चरण छुए और रस्सी खोल दी, वह बाहर भाग गयी। तब रामसिंहने एक गोली अपनी छातीमें मार ली और मरकर वहीं गिर पड़े।

सबेरा हुआ। सारा सामाचार शहरमें फैल गया। हिंदू पब्लिकने रामसिंहकी अर्थी बनायी। एक सेठजीने लाशपर पाँच सौ रुपयेका दुशाला डाल दिया। चार साधुओंने लाशमें कन्धा लगाया। शहरके हलवाइयोंने बतासे जमा किये। सराफोंने पैसे जमा किये। धनिकोंने पैसे और रेजगारी इकट्ठी की। माली लोगोंने फूल इकट्ठे किये। जब लाश चली तो आगे-आगे कुर्बानीवाली गाय सजाकर चलायी गयी; पीछे शंख, घण्टा और घड़ियालका नाद होने लगा। रास्तेमें फूल-बतासे, पैसा और रेजगारी बरसायी जाने लगी। विराट् जुलूस निकाला गया। कई एक सहृदय मुसलमान और ईसाई सज्जन भी साथ थे।

श्मशानपर जब लाश उतारी गयी, तब जनाब मुहम्मद-अली सौदागरने लाशपर गुलाबके फूल चढ़ाकर कहा—'हजरत मुहम्मद साहबने शरीफमें लिखा है कि उन जानवरोंको हरगिज न मारा जाय जो पब्लिकको आराम पहुँचाते हैं।' बादशाह अकबर और बादशाह जहाँगीरने कानून बनाकर गोकुशी बन्द कर दी थी। अफसोस है कि हमारे तअस्सुबी मुसलमान, सिर्फ हिन्दू भाइयोंका दिल दुखानेकी गरजसे गोकुशी करते हैं। मैं उनपर लानत भेजता हूँ।

पादरी यंग साहब ईसाई थे। उन्होंने कहा—'सरकार अगर गोकुशी कराती होती तो विलायतमें खूब गोकुशी की जाती। मगर वहाँ इसका नामोनिशानतक नहीं है। विलायतके सभी अंग्रेज किसान गायोंको पालते हैं। अफसोस है कि सिर्फ चमड़ेके व्यापारने गोकुशीका बुरा काम जारी रखा है। भाई रामसिंहकी बहादुरीकी मैं तारीफ करता हूँ। आप साहबानसे प्रार्थना करता हूँ कि ठाकुर रामसिंहके बाल-बच्चोंके वास्ते कुछ चंदा किया जाय।' उसी समय पन्द्रह हजारका चन्दा लिखा गया। उसमें सहृदय जनाब मुहम्मदअली साहबने तीन हजार और पादरी साहबने एक हजार रुपये दिये।

यह घटना अक्षरशः सत्य है। केवल नाम बदल दिये गये हैं।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भक्तकी सच्चे हृदयकी पुकार भगवान् अवश्य सुनते हैं

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपने एक पत्रमें लिखा था कि अच्छी स्थितिमें भी भगवान्‌पर भरोसा नहीं होता तब साधनकी शिथिलतामें तो हो ही कहाँसे, परंतु अब ज्यादा निराशा नहीं होती। सो भगवान्‌पर भरोसा तो अच्छी, बुरी सभी स्थितियोंमें रखना चाहिये। इसके सिवा और सहारा ही क्या है? बलवान् और निर्बल सभीके बल एक भगवान् ही हैं, परंतु अपनेको वास्तवमें निर्बल मानकर भगवान्‌के बलपर भरोसा रखनेवालेका बल तो भगवान् हैं ही। इस भगवान्‌के बलको पाकर वह अति निर्बल भी महान् बलवान् हो सकता है—**'मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्'** प्रसिद्ध है।

भगवान्‌को पुकारनेभरकी देर है। बीमार बच्चा बाहर बैठी हुई माँको पुकारे तो क्या माँ उसकी पुकार नहीं सुनती या कातर पुकार सुनकर भी आनेमें कभी देर करती है? अवश्य ही यह बात होनी चाहिये कि माँ बाहर मौजूद हो और बच्चेकी सच्ची कातर-पुकार हो। माँ मौजूद नहीं होगी तो बिना सुने कैसे आयेगी और बच्चेकी पुकार केवल बनावटी और विनोदभरी होगी तो माँ सुनकर भी अपनी आवश्यकता न समझकर नहीं आयेगी। परंतु कातर पुकार सुननेपर तो माँसे रहा ही नहीं जायगा। जब माँकी यह बात है तब सारी माताओंका एकत्र केन्द्रीभूत स्नेह जिस भगवान्‌के स्नेहसागरकी एक बूँद भी नहीं है, वह भगवान्‌रूपी माँ दुखी जीव-संतानकी कातर पुकार सुनकर कैसे रह सकेगी? जीव एक तो उसे अपने पास मौजूद मानता ही नहीं, दूसरे उसकी पुकार बनावटी और लोग-दिखाऊ होती है। यदि जीव यह माने कि भगवान् यहाँ मौजूद हैं (जो वे वास्तवमें हैं ही; क्योंकि वे सर्वव्यापी हैं) और वे बड़े दयालु हैं तथा यों मानकर उन्हें कातर स्वरसे पुकारे तो फिर उनके आनेमें देर नहीं होती। द्रौपदीकी पुकारपर चीर बढ़ाना और द्वारकासे तुरंत वनमें पहुँचकर पाण्डवोंको दुर्वासाके शापसे बचाना प्रसिद्ध ही है।

नियमोंका पालन प्रेम और अति दृढ़ताके साथ करते रहें। कृपा तो भगवान्‌की है ही। उस कृपाका अनुभव करते ही मनुष्य भगवदभिमुखी हो सकता है। सदा प्रसन्न रहिये और भगवान्‌की कृपाका दृढ़ भरोसा रखिये। भगवान्‌को नित्य अपने साथ मानिये, फिर पाप-ताप समीप भी नहीं आ सकते। ×××× निराश तो जरा भी न होइये। भगवान्‌के बलका भरोसा करनेपर निराशा कैसी? शेष प्रभुकृपा।

(२)

भगवत्साक्षात्कारके उपाय

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) उत्तम लेखोंके संग्रह करनेवाले तथा उत्तम लेख लिखनेवालोंको ईश्वरसाक्षात्कार होना ही चाहिये, यह कोई बात नहीं है। लेख संग्रह करना और लिखना तो परिश्रम, दक्षता, अध्ययन, अभ्यास तथा विद्यासे भी हो सकता है। प्रभुका साक्षात्कार तो प्रेम—सच्चे प्रभु-प्रेमसे होता है। वहाँ विद्या, यज्ञ, दान, कर्म, तप आदिका इतना महत्त्व नहीं है, जितना प्रेमका है। वास्तवमें सत्य प्रेम ही प्रभुका स्वरूप है—

प्रेम हरीको रूप है, वे हरि प्रेमस्वरूप।
एकहि ह्वै द्वैमें लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

प्रभु-प्रेम सर्वथा अनन्य और अव्यभिचारी हुआ करता है। उस प्रेमका भाग दूसरे किसीको किंचित् भी नहीं मिलता।

मैं अपने सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखना चाहता। इतना ही लिखता हूँ कि मैं अपने ऊपर भगवान्‌की बड़ी कृपा समझता हूँ और पद-पदपर उस परम कृपाका अनुभव करता हूँ।

(२) इस कलिकालमें भगवान्का साक्षात्कार अवश्य हो सकता है। भगवान् नित्य हैं तो उनका साक्षात्कार भी सर्वकालमें नित्य है। भगवान्के साक्षात्कारका पहला उपाय तो साक्षात्कारकी अति तीव्र और एकमात्र इच्छाका होना है। भगवान्की माधुरी मूरतिके दर्शनके लिये प्राणोंमें व्याकुलता, मनमें वेदना और अन्य सारी अभिलाषाओंका त्याग हो जाना चाहिये, परंतु यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि अपने पुरुषार्थके बलसे भगवान्के दर्शन नहीं हो सकते। उस वस्तुकी कोई कीमत नहीं है, जिसके बदलेमें वह मिल जाय। व्याकुलता, वेदना और अन्य सारी आकांक्षाओंका त्याग कोई साधन नहीं है। ये तो प्रभु-विरहीके लक्षण हैं। भगवद्दर्शन तो उन्हींकी कृपासे होते हैं। आप जिस स्वरूपके दर्शन चाहते हैं, उसीके दर्शन हो सकते हैं। परंतु इसमें किसी मनुष्यकी सहायता क्या काम दे सकती है। आपका और आपके प्रभुका बड़ा ही निकटका सम्बन्ध है; वे आपमें हैं और आप उनमें हैं, वे आपके हैं और आप उनके हैं। इस सीधे सम्बन्धको पहचानकर, पहचाननेमें न आये तो विश्वास करके ही उन्हें सच्चे हृदयसे पुकारिये। आपकी व्याकुल पुकारसे बड़ा काम हो सकता है। भगवान् सब स्थानोंमें सब कालमें पूर्णरूपसे विराजमान हैं। पुकार सुनते ही उत्तर देते हैं। बच्चा छटपटाता हो और माँ बाहर बैठी हो तो क्या वह बच्चेकी पुकार सुनकर कभी उसके पास आये बिना रह सकती है? पुकार बनावटी हो या माँ न हो तो दूसरी बात है। यहाँ न होनेका तो सवाल ही नहीं है; क्योंकि भगवान् तो सर्वत्र सर्वकालमें हैं ही। अब आवश्यकता केवल सच्ची पुकारकी है। भगवान् यहाँपर हैं, मेरे एकमात्र प्रेमास्पद हैं। इस विश्वास और निश्चयपर दृढ़तासे आरूढ़ होकर जो भगवान्को पुकारा जाता है, वही सच्ची पुकार है। दो बातें होनी चाहिये—एक भगवान्के यहाँ होनेमें दृढ़ विश्वास और दूसरी उन्हींको एकमात्र अपना परम प्रेमपात्र समझना। बस, ऐसा समझकर तीव्र इच्छा और प्राणोंकी व्याकुलतासे जिस किसीने उनको पुकारा है, उसीने उनकी दिव्य झाँकीका दर्शन प्राप्त किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवान्के श्रृंगारकी-जैसी आप ठीक समझें, वैसी ही भावना करें। दर्शन होनेपर असलीका पता आपको ही लग सकता है। नामका जप—जो नाम आपको प्रिय लगे, उसीका जप करें, परंतु श्रीकृष्णभगवान्के उपासकके लिये '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' या '**श्रीराम कृष्ण हरि**' अथवा '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' ये मन्त्र बहुत उपादेय हैं। भगवान्को जल्दी आकर्षण करनेका उपाय तो प्रेम है—अनन्य प्रेम है। सारी इन्द्रियाँ उन्हीकी सेवामें लग जानी चाहिये, आरम्भमें नियमपूर्वक नाम-जप, सदा नाम जपते हुए ही कार्य करनेका अभ्यास, नियमित ध्यान करनेकी चेष्टा, ध्यानकी चेष्टा रखते हुए ही कार्य करनेका अभ्यास, असत्य, दम्भ और अभिमानका त्याग, दीनता, नम्रता, प्रेम, मैत्री आदिका ग्रहण करना—ये ही उपाय हैं।

भगवान्की कृपाका भरोसा रखना—'उनकी कृपासे मेरा अवश्य उद्धार होगा, भगवान् मुझे जरूर दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे' ऐसा निश्चय रखना; 'भगवान् सदा मेरे साथ हैं, मैं उनके शरणागत हूँ, उनका वरद हाथ मेरे मस्तकपर है, मेरे कृतकार्य होनेमें कोई सन्देह नहीं, पाप मेरे पास नहीं आ सकते।' इस प्रकारकी दृढ़ भावना करना बहुत लाभकारी है। शेष प्रभुकृपा।

(३)

ग्रहोंकी शान्तिके उपाय

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। वस्तुतः ग्रहोंकी शान्तिके लिये शास्त्रोंमें जो जप, पूजा और अनुष्ठानादि बतलाये गये हैं, उन्हींको विधिपूर्वक करना चाहिये। किंतु सब ग्रहोंकी शान्तिके लिये सबसे बढ़कर उपाय तो भगवान्का निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भजन करना ही है। यही सत्य और अटल उपाय है। इससे सब ग्रहोंकी शान्ति अपने-आप हो जाती है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७। ३८ बजेतक	शनि	मूल अहोरात्र	१० जून	× × ×
द्वितीया ,, ९। २६ बजेतक	रवि	मूल दिनमें ७। १८ बजेतक	११ ,,	**मूल** दिनमें ७। १८ बजेतक।
तृतीया ,, १०। ५४ बजेतक	सोम	पू० षा० ,, ९। २४ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ९ बजेसे रात्रिमें १०। ५४ बजेतक, **मकरराशि** दिनमें ४। २ बजेसे।
चतुर्थी ,, ११। ५५ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, ११। २८ बजेतक	१३ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ४४ बजे।
पंचमी ,, १२। ३० बजेतक	बुध	श्रवण ,, १२। ५७ बजेतक	१४ ,,	**कुंभराशि** रात्रिमें १। २६ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १। २६ बजे।
षष्ठी ,, १२। ३३ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, १। ५५ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। ३३ बजेसे, **मिथुन-संक्रान्ति** दिनमें १२। १ बजे।
सप्तमी ,, १२। ५ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, २। २२ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। १९ बजेतक।
अष्टमी ,, ११। ८ बजेतक	शनि	पू० भा ,, २। २१ बजेतक	१७ ,,	**मीनराशि** दिनमें ८। २१ बजेसे।
नवमी ,, ९। ४६ बजेतक	रवि	उ० भा० ,, १। ५३ बजेतक	१८ ,,	**मूल** दिनमें १। ५३ बजेसे।
दशमी ,, ८। ३ बजेतक	सोम	रेवती ,, १। ५ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ५४ बजेसे रात्रिमें ८। ३ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें १। ५ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें १। ५ बजे।
एकादशी सायं ६। ० बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, ११। ५५ बजेतक	२० ,,	**मूल** दिनमें ११। ५५ बजेतक, **योगिनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी दिनमें ३। ४५ बजेतक	बुध	भरणी ,, १०। ३० बजेतक	२१ ,,	**वृषराशि** दिनमें ४। ६ बजेसे, **प्रदोषव्रत, सायन कर्कका** सूर्य दिनमें ४। ४१ बजे, आर्द्राका सूर्य दिनमें १२। ३३ बजे।
त्रयोदशी ,, १। २० बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, ८। ५६ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें १। २० बजेसे रात्रिमें १२। ६ बजेतक।
चतुर्दशी ,, १०। ५२ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ७। १७ बजेतक	२३ ,,	**मिथुनराशि** सायं ६। २७ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या।
अमावस्या ,, ८। २४ बजेतक	शनि	मृगशिरा प्रात: ५। ३७ बजेतक	२४ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ६। १ बजेतक	रवि	पुनर्वसु रात्रिमें २। ३६ बजेतक	२५ जून	**कर्कराशि** रात्रिमें ९। ३ बजेसे, **अनुदया श्रीजगदीश रथयात्रा।**
तृतीया रात्रिमें १। ४९ बजेतक	सोम	पुष्य ,, १। २५ बजेतक	२६ ,,	**मूल** रात्रिमें १। २५ बजेसे।
चतुर्थी ,, १२। ९ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, १२। ३५ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ५९ बजेसे रात्रिमें १२। ९ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें १२। ३५ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १०। ५३ बजेतक	बुध	मघा ,, १२। ४ बजेतक	२८ ,,	**मूल** रात्रिमें १२। ४ बजेतक।
षष्ठी ,, १०। २ बजेतक	गुरु	पू० फा० ,, १२। ० बजेतक	२९ ,,	**श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, ९। ३९ बजेतक	शुक्र	उ० फा० ,, १२। २५ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। ३९ बजेसे, **कन्याराशि** प्रात: ६। ६ बजेसे।
अष्टमी ,, ९। ४७ बजेतक	शनि	हस्त ,, १। २० बजेतक	१ जुलाई	**भद्रा** दिनमें ९। ४४ बजेतक।
नवमी ,, १०। ३० बजेतक	रवि	चित्रा ,, २। ४६ बजेतक	२ ,,	**तुलाराशि** दिनमें २। ३ बजेसे
दशमी ,, ११। ३८ बजेतक	सोम	स्वाती रात्रिशेष ४। ३९ बजेतक	३ ,,	× × ×
एकादशी ,, १। १२ बजेतक	मंगल	विशाखा अहोरात्र	४ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। २४ बजेसे रात्रिमें १। १२ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें १२। २० बजेसे, **श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत।**
द्वादशी ,, ३। २ बजेतक	बुध	विशाखा प्रात: ६। ५५ बजेतक	५ ,,	**चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ।**
त्रयोदशी रात्रिशेष ५। २ बजेतक	गुरु	अनुराधा दिनमें ९। २५ बजेतक	६ ,,	**प्रदोषव्रत, पुनर्वसुका सूर्य** दिनमें २। ८ बजे, **मूल** दिनमें ९। २५ बजेसे।
चतुर्दशी अहोरात्र	शुक्र	ज्येष्ठा ,, १२। २ बजेतक	७ ,,	**धनुराशि** दिनमें १२। २ बजेसे
चतुर्दशी प्रात: ७। २ बजेतक	शनि	मूल ,, २। ३६ बजेतक	८ ,,	**मूल** दिनमें २। ३६ बजेतक, **भद्रा** दिनमें ७। २ बजेसे रात्रिमें ७। ५६ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा दिनमें ८। ५१ बजेतक	रवि	पू० षा० सायं ४। ५७ बजेतक	९ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ११। २७ बजेसे, **गुरुपूर्णिमा।**

कृपानुभूति

(१)

श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी कृपा

मेरी छः वर्षीय नातिन जो कि कक्षा-१ में पढ़ती है, वह हमेशा श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी पूजा मेरे साथ करती है तथा उसको कई श्लोक भी याद हैं। शामको वह आरतीमें अक्सर मेरे साथ रहती है। दिनांक २१ अप्रैल २०१६ ई० को सायं ४ बजेकी घटना है, उसका छोटा भाई जो लगभग ढाई सालका है, खेलते वक्त उसकी नाकके अन्दर एक लाल रंगका मोती चला गया। मैं स्वयं भी पेशेसे चिकित्सक हूँ। मैंने मोती निकालनेका काफी प्रयास किया, परंतु वह नहीं निकला। थोड़ी देरमें हमलोग उसे लेकर मेडिकल कॉलेज अस्पताल गये, वहाँपर नाक-कान-गले विभागके डॉ० अग्रवाल, जो कि अपने निवासमें सो रहे थे, उन्हें उठाया और तत्काल समस्यासे अवगत कराया। इस बीच मेरी पत्नी उस बालकको गोदमें लेकर गाड़ीमें ही बैठी रही। जैसे ही डॉ० अग्रवालने ऑपरेशन टेबलमें पूरी तैयारी करके उसे अन्दर लानेको कहा, इतनेमें स्वतः ही उसके नाकसे वह लाल रंगका मोती निकल गया, जबकि वह बालक उस समय सो रहा था। तत्काल ही मैंने उन्हें बताया कि मोती तो अपने आप ही निकल गया। तत्पश्चात् उनका शुक्रिया अदा करके हम लोग बच्चेको लेकर घर आ गये। जब हमलोग अस्पतालमें थे, उस वक्त घरमें अकेले मेरी नातिन ही थी। हमलोगोंके जानेके बाद उसने अपने मनसे घरमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी मूर्ति जहाँपर हमलोग रोज पूजा करते हैं, वहाँपर उसने अगरबत्ती जलायी और ***‘बेगि हरो हनुमान महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो’***का बार-बार पाठ करने लगी। अस्पतालसे आनेपर उसने यह बात हमलोगोंको बतायी। हमारा स्वयंका विश्वास है कि बच्चेके आग्रहको श्रीहनुमान्‌जी महाराज टाल नहीं सके और एक गम्भीर घटनासे ऐसे बचा लिया, जैसे कुछ हुआ ही न हो।—**डॉ० हरिकृष्ण पाण्डेय**

(२)

रामललाकी कृपा

यह घटना सितम्बर २०१५ ई० की है। मैं रक्षाबन्धनके अवसरपर सपत्नीक अपने सालेके पास भिवाड़ी गया हुआ था। हमारा ६ सितम्बर २०१५ ई० को दिल्ली-से-बनारसका रिजर्वेशन था। हम दिल्लीसे करीब ११ बजे रवाना होकर दूसरे दिन सुबह बनारस पहुँचे। वहाँ काशी विश्वनाथके दर्शन करके प्रयाग पहुँचे। वहाँ संगममें स्नान करके अगले दिन बसद्वारा ९ सितम्बरको सायं अयोध्या पहुँच गये। सबेरे सरयूमें स्नान किया, तत्पश्चात् हनुमानगढ़ी तथा अन्य दर्शनीय स्थानोंमें दर्शन करते हुए अन्तमें राम-जन्मस्थली गये।

रामललाका मन्दिर छावनी बना हुआ था। जगह-जगह दर्शनार्थियोंकी चेकिंग की जा रही थी। स्त्री-पुरुषकी अलग-अलग चेकिंगकी व्यवस्था थी। पहली चौकीपर चेकिंगके पश्चात् हम आगे बढ़े। दूसरी चौकीपर पहुँचनेपर मेरी पत्नीको तो आगे जानेकी अनुमति मिल गयी, किंतु मुझे वहींपर रोक लिया गया और कहा कि पैन्ट ऊपर करिये, आपने पैन्टमें क्या छिपा रखा है? मैंने पैन्टको घुटनेसे ऊपर करते हुए दिखाया कि मैंने कुछ नहीं छिपाया है। तब गार्डने कहा कि मशीन बता रही है कि कोई वस्तु छिपी हुई है। तब एकाएक मुझे स्मरण हो आया और मैंने निवेदन किया कि मेरे बायें पैरमें फ्रैक्चर हो गया था और पैरके अन्दर हड्डीमें स्टीलकी राड पड़ी है। उसने कहा आप अन्दर नहीं जा सकते। आप वापस पीछे चौकीपर जाकर अनुमति लेकर आयें। मैं पत्नीको वहीं ठहरनेके लिये कहकर वापस चौकीपर आया और वहाँ बैठे अधिकारीको सारी बात बताकर उनसे रामललाके दर्शनहेतु अनुमति प्रदान करनेका निवेदन किया। पर काफी अनुनय-विनय करनेके पश्चात् भी मुझे अनुमति नहीं मिली और मैं हताश होकर पत्नीको वापस लाने चला गया। मैंने पत्नीसे कहा, ‘मुझे अन्दर जानेकी अनुमति नहीं मिली। तुम अन्दर जाकर रामललाके दर्शन कर आओ।’ पत्नीने कहा—मैं अकेली नहीं जाऊँगी!

हम दोनोंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि हे भगवान्! आपके द्वारपर आकर हम बिना दर्शन किये जा रहे हैं। यह कहकर हम दोनों वापस आनेको रवाना ही हुए थे कि भगवान्‌ने हमारी प्रार्थना सुन ली और गार्डके पास वायरलेस आया, जिसमें मुझे अन्दर जानेकी अनुमतिके लिये कहा गया था। घट-घटवासी प्रभुने हमारी प्रार्थना सुन ली थी। इस प्रकार रामललाकी कृपासे हमें उनके दर्शन हो गये।—**हिम्मतसिंह राठौर**

पढ़ो, समझो और करो

ताँगेवालेकी आदर्श ईमानदारी और सेवाभाव

घटना पुरानी है, मध्यप्रदेशके एक प्रतिष्ठित व्यापारी पचास हजार रुपये लेकर दक्षिणमें (मैसूर, मदुरा और मद्रास) माल खरीदनेके लिये जा रहे थे। इस प्रान्तमें शतरंजी और साड़ियाँ एवं मैसूरमें चन्दनकी लकड़ीकी कलामय वस्तुएँ अच्छी और सुन्दर बनती हैं। व्यापारीने एक-एक हजारके ५० नोट बनयानके दोनों जेबोंमें रख लिये और जेबोंको खूब सी लिया था। सबसे पहले यह व्यापारी मैसूर उतरकर यहाँसे १४ मील दूर कृष्णराजसागरका बाँध और इलेक्ट्रिक प्रदर्शन देखने गया।

यह प्रदर्शनीय स्थल शामको ४ बजेसे रातके १० बजेतक मैसूर-सरकारकी ओरसे आम जनताके लिये खुला रहता है। व्यापारीने कृष्णराज-सागरका बाँध एवं अद्‌भुत विद्युत्-प्रकाश, जो कि फव्वारों और क्यारियोंमें अपनी अनोखी छटा दिखाकर दर्शकोंको मोहित कर लेता है, देखा। देखकर वह पुलकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था कि उसे अचानक चक्कर आया और वह पुलकी सीढ़ियोंपर लुढ़कता हुआ नीचे चला आया।

व्यापारी सुदृढ़ शरीरवाला और शारीरिक शक्ति-सम्पन्न था। अतः वह हाथ-पैरों एवं मस्तकका रक्त पोंछकर फिर पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। अन्तिम सीढ़ीपर ज्यों ही पैर रखा कि उसे फिर जबर्दस्त चक्कर आया और दूसरी बार पुनः सीढ़ियोंपर लुढ़कने लगा। पुलके पास ही ताँगा-स्टैंड था। कई ताँगेवाले खड़े थे, जिनमेंसे एक ताँगेवालेने इस व्यापारीको पुलकी सीढ़ियोंसे लुढ़कते देख लिया। उसने चाबुक ताँगेमें रखा और पुलपर आया। तबतक आहत व्यापारी लुढ़कता हुआ सबसे नीचेकी सीढ़ीपर आकर लहूलुहान हालतमें पड़ा था। बेहोशी भी आ गयी थी।

ताँगेवालेने उस रक्तरंजित व्यापारीको, जिसके वस्त्र रक्तमें सने थे, गोदीमें उठाया और जैसे-तैसे सीढ़ियाँ चढ़कर ताँगेमें सुला दिया। एक हाथसे व्यापारीको, जो कि अर्धमृतक-सी अवस्थामें था, पकड़े और एक हाथसे घोड़ेकी रास थामे घोड़ेको हाँक रहा था। चार-पाँच मील चलनेके बाद व्यापारीको कुछ होश-सा आया और उसने लड़खड़ाती जबानसे पूछा, 'कौन?' 'मैं हूँ ताँगेवाला। मैंने आपको कृष्णराजसागरके पुलके जीनेसे गिरते हुए देखा था। आपके साथ कोई था नहीं और आप बेहोशीकी हालतमें थे। मेरे मनमें आया कि मैं एक घायल व्यक्तिकी सेवा करूँ और आपको अपने घर भेज दूँ। हूँ तो ताँगेवाला, पर ईमानदार हूँ और ईमानदारीके लिये ही जीता हूँ।' व्यापारीने कोटकी जेबमेंसे एक सौ रुपयेका नोट निकालकर ताँगेवालेको देते हुए कहा 'लो तुम्हारे लिये इनाम।'

ताँगेवालेने व्यापारीसे कहा—'सेवाका मूल्य सोने-चाँदीके टुकड़ोंसे नहीं आँका जा सकता। मैं आपको इसलिये नहीं लाया कि आप मुझे इनाम दें और न मुझे इस प्रकारका लोभ-लालच ही है, मेरा पेशा ऐसा है कि सभ्य-समाज इस पेशेको हलका पेशा कहता है और हमारे समाजको बेईमान, धोखेबाज, चालबाज बतलाता है। पर ऐसी बात नहीं है। मैं तो भगवान्‌को चारों ओर देखकर जीता हूँ। मुझे डर लगता है कि यदि मैं बेईमान हो गया तो भगवान्‌के न्यायालयमें क्या उत्तर दूँगा। मैं ऐसा मानता हूँ कि इस प्रकार मेरा डरना मेरे लिये ईमानदार बननेके सम्बन्धमें रामबाण सिद्ध हुआ है।'

ताँगेवालेका लंबा भाषण सुनकर व्यापारीने कोटकी दूसरी जेबमेंसे सौ-सौके पाँच नोट निकाल ताँगेवालेके हाथपर रख दिये। ताँगेवाला अबकी बार झल्ला उठा और उसने कहा, 'माफ कीजिये, मुझे एक भी पाई आपसे लेना हराम है!' और उसने सौ-सौके पाँच नोट व्यापारीको लौटा दिये, किंतु नोट व्यापारीके हाथमें न जाकर ताँगेमें ही गिर गये। ताँगेवालेने मुड़कर देखा तो व्यापारी बेहोश हो गया था और उसके मुँहसे सफेद

झाग निकल रहे थे।

इस दृश्यको देखकर ताँगेवालेके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हे प्रभो! क्या यह व्यक्ति अपने घर पहुँचनेके पहले ही विदा ले लेगा और मेरी सेवा अधूरी रहेगी? यह व्यक्ति तो श्रीमान् मालूम पड़ता है, अन्यथा दो-चार रुपयेकी मजदूरीके लिये ५०० रुपये न देता। लगता है यह व्यक्ति मैसूर या मैसूर-प्रान्तका नहीं है; यह हिन्दी बोलता है, उत्तरप्रदेश या मध्यप्रदेशका होना चाहिये। तब क्या यह व्यापारी है? तब तो इसके पास हजारों रुपये होंगे। मैसूर यहाँसे ८ मील दूर है और वहाँतक पहुँचनेके लिये कम-से-कम एक घण्टा लगेगा।

पाँच नोट जो कि ताँगेमें ही गिर गये थे, उन्हें उठाकर उसने व्यापारीके कोटके जेबमें रख दिया। पर कोटके नीचे कुछ उठा हुआ-सा भाग दीख रहा था; ताँगेवालेने टटोलकर देखा तो बनयानके दोनों जेब लबालब भरे थे। उसे संतोष हुआ कि दोनों जेब सिले हुए थे। ठीक १० बजे ताँगेवाला मैसूर पहुँचा और पुलिस-स्टेशन जाकर ताँगा रोका और रिपोर्ट की।

समयकी बात, उस समय डी०एस०पी० वहीं थे। वे अन्य चार पुलिस जवानोंके साथ ताँगेके पास आये। देखा तो एक सुन्दर सुडौल गौरवर्ण नवयुवक मुँहसे झाग डाल रहा है। कभी-कभी एक सेकेण्डके लिये आँखें खुल जाती हैं। डी०एस०पी० ने सबसे पहले सिविल सर्जनको फोन करके बुलाया। इसके बाद पुलिसके जवानोंके साथ नवयुवककी तलाशी ली। कोटके जेबमें सौ-सौके ७ नोट, माल खरीदनेकी सूची, डायरी और कर्नाटक रेस्टोराँकी एक स्लिप मिली। कमीजकी जेब खाली मिली। बनियानके जेब खोलकर देखे गये तो पचास हजारके नोट मिले।

अब डी०एस०पी० को यह समझते देर न लगी कि यह मध्यप्रदेशका एक प्रतिष्ठित व्यापारी है, दक्षिण-प्रान्तमें माल खरीदने आया है। ताँगेवालेके बयान लिये। उसने ईमानदारीके साथ सभी घटनाएँ स्पष्ट रख दीं। ताँगेवालेकी ईमानदारीसे डी०एस०पी० को विशेष हर्ष हुआ कि एक ताँगेवाला, जिसे लोग बेईमान समझते हैं, कितना ईमानदार हो सकता है। फिर डी०एस०पी० ने कर्नाटक रेस्टोराँके मैनेजरको फोन किया कि रोजनामचा (जिसमें बाहरसे आनेवाले मुसाफिरोंका नाम,धाम एवं पता होता है) लेकर शीघ्र आओ। इतनेमें सिविल सर्जन मय स्टाफ (नर्सरी एवं सर्जरी)-के आ गये, उन्होंने बीमारकी श्रमपूर्वक अच्छी तरह जाँच की।

जाँचकर सिविल सर्जनने बताया कि यह मरीज अधिक-से-अधिक एक घण्टेका मेहमान है। सतत रक्तप्रवाहके कारण अब इसका बचना असम्भव है। डाक्टरने अथक प्रयत्न करके आहत नवयुवक व्यापारीको सचेत किया। वह होशमें आ गया। उसने पासमें ही ताँगेवालेको बैठा देखा और धीमे स्वरमें कहा—'मैं कृष्णराजसागर-पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था कि एकाएक चक्कर आया और मैं जमींदोज हो गया। जैसे-तैसे साहस करके दुबारा सीढ़ियाँ चढ़ने लगा कि मुझे फिर चक्कर आ गया। इसके बाद क्या हुआ, यह मुझे पता नहीं। होश आनेपर मैंने अपने आपको पाया कि मैं ताँगेमें जा रहा हूँ। विचार आया कि ताँगेवालेने हमदर्दीके नाते मुझपर दया की और मैसूर ले जा रहा है।

'मैं ताँगेवालेकी हमदर्दीसे बहुत प्रभावित हुआ और उसे सौ रुपये इनाममें दिये, पर उसने नहीं लिये। फिर पाँच सौ रुपये इनाममें दिये। इनाम देनेके बाद ही मुझे बेहोशी आ गयी। होश आनेपर मैं आपलोगोंको अपने सामने देखता हूँ। मुझे यह पता नहीं कि ताँगेवालेने वे पाँच सौ रुपये लिये या नहीं; मुझे ईमानदार, नेक एवं सेवाभावी व्यक्ति मालूम होता है।' इतनेमें कर्नाटक रेस्टोराँके मैनेजर आ गये। उन्होंने वह रोजनामचा दिखलाया, जिसमें निम्न प्रकार लिखा हुआ था—दिनांक २२ दिसम्बर १९५४ श्रीमहेशचन्द्र कौल, फर्मका नाम महेशचन्द्र गिरिजाशंकर, निवासी मालपुरा, जिला बस्तर, मध्यप्रदेश। रोजनामचेपर तीन दिनोंतक रेस्टोराँमें ठहरनेकी

स्वीकृति और मैनेजरके हस्ताक्षर थे।

इसके बाद महेश कौलने पुन: मन्द स्वरमें कहा—'मुझे ऐसा लगता है कि अब मैं कुछ ही मिनटोंका मेहमान हूँ। ताँगेवालेने मेरी खूब सेवा की है, इसे पाँच हजार रुपये मेरी ओरसे इनाम दे देना। मैं पचास हजार नौ सौ रुपये लेकर घरसे चला था। पचास हजार मैंने बनयानके जेबमें रख लिये थे और नौ सौ ऊपरी खर्चके लिये, जिसमें सात सौ रुपये अभी भी मौजूद हैं। शेष खर्च (मार्गव्यय आदि) हो गये। आप मेरी फर्मके नामपर फोन कर दें, मेरा छोटा भाई गिरिजाशंकर आ जायगा।'

डी०एस०पी० ने कहा—'आप घबराइये नहीं, हम सरकारी नौकर ही नहीं, आपलोगों (जनता)-के भी नौकर एवं सेवक हैं। आपके पचास हजार सात सौ सुरक्षित हैं। आपने ताँगेवालेको पाँच सौ दिये थे, वे उसने लिये नहीं; और आपकी बेहोशी हालतमें उसने आपके कोटके जेबमें रख दिये थे। सचमुच ताँगेवाला बहुत ही ईमानदार व्यक्ति है, इसकी ईमानदारी जनताको ईमानदार बननेका पाठ पढ़ाती है।

मैंने बहुत-से ताँगेवाले देखे हैं, पर ऐसा ईमानदार ताँगेवाला नहीं देखा। आपकी बेहोशी हालतमें वह पचास हजार सात सौ रुपये अपने कब्जेमें करके, आपका गला घोंटकर, चाहे जहाँ भाग सकता था। पर जहाँ ईमानदारीका प्रश्न है, वहाँ न तो परका हनन होता है और न स्वयंका, किंतु वहाँ तो स्व-परका संरक्षण एवं कल्याण होता है।'

महेश कौल डी०एस०पी० के कथनको ध्यानसे सुन रहा था कि दो मिनट बाद ही उसे खूनकी उलटी हुई और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तमाम पुलिस स्टाफ, सिविल सर्जनका स्टाफ और कर्नाटक रेस्टोराँके स्टाफने सलाह करके निर्णय किया कि महेश कौलके शवका अग्नि-संस्कार ताँगेवाला ही करेगा; इसकी महती सेवा है और सेवाके नाते इसे यह अधिकार प्राप्त है। ताँगेवालेने काँपते हाथों कौलके शवका अग्नि-संस्कार किया और चितामेंसे निकली धूम्रराशि अनन्त आकाशमें विलीन होने लगी।

शव-यात्राके यात्री विधिके विधानपर सोच रहे थे कि 'कौल' कहाँ जन्मा, कहाँ स्वर्गवासी हुआ और किस प्रकार पचास हजारकी रकम सुरक्षित बची रही। दूसरी ओर उपस्थित जनता ताँगेवालेकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रही थी और ताँगेवालेकी ईमानदारीके प्रति सभीके मस्तक झुके हुए थे।

तीसरे दिन महेशचन्द्र 'कौल' के छोटे भाई श्रीगिरिजाशंकर आ गये। उन्होंने महेशके मृत्यु-सम्बन्धी सभी समाचार ज्ञात किये। उन्हें भाईकी मृत्युसे असह्य दु:ख हुआ; पर ताँगेवालेकी ईमानदारी, उदारता एवं नि:स्वार्थ वृत्तिसे अपार आनन्द भी हुआ। गिरिजाशंकरने विचार किया कि भाई साहब पचास हजार रुपयेका माल खरीदने आये थे। अब वे असमयमें ही चले गये, फिर ये रुपये मैं वापस क्यों ले जाऊँ? बड़े भाईके स्मृतिस्वरूप ताँगेवालेकी सेवाके उपलक्ष्यमें उसे दान क्यों न कर दूँ? फलत: गिरिजाशंकरने पचास हजारकी बृहद् धनराशि ताँगेवालेको देते हुए कहा कि 'तुम्हें और तुम्हारे बच्चोंके ये काम आयेंगे।' पर ताँगेवालेने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—'भाई! आप मुझे जो धनराशि दे रहे हैं, उसका मूल्य है; पर ईमानका मूल्य नहीं होता। अत: आप मुझे आशीर्वाद दें कि मेरे लिये सतत अमूल्य निधि ईमानकी प्राप्ति हो; फिर मैं संसारमें सबसे बड़ा धनिक हूँ, ऐसा मैं मानता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। रही बात बच्चोंकी, सो वे अपने भाग्यके निर्माता स्वयं हैं। गरीबीमें ईमान बना रहे, यही मुझे और मेरे परिवारके लिये सब कुछ है।' गिरिजाशंकरके मुँहसे अनायास निकल गया 'तुम इन्सान नहीं, इन्सानके रूपमें फरिश्ते हो। मैं अपने भाईको खोकर और तुमसे ईमानदारीका बोध-पाठ लेकर हर्ष-विषादके वातावरणमें अपने देश वापस जा रहा हूँ, तुम्हारी ईमानदारीकी चर्चा सर्वत्र करूँगा।' धन्य! **(स्वतन्त्र)**

मनन करने योग्य

अहंकार-नाश

किसी राष्ट्रकार्य-धुरन्धर अथवा साधारणसे व्यक्तिमें समस्त दुर्गुणोंका अग्रणी अहंकार या अभिमान जब प्रवेश पा जाता है, तब उसके कार्योंमें होनेवाली उन्नतिकी बात तो दूर रही, किये हुए कार्योंपर भी पानी फिरनेमें विलम्ब नहीं लगता। पर यदि उसे यथासमय सचेत कर दिया गया तो वह यशके शिखरपर पहुँच ही जाता है। इस प्रकारकी अनेक कथाएँ अपने इतिहास-पुराणादिमें हैं। इस सन्दर्भमें लगभग ३०० वर्ष पूर्वकी एक सत्कथा इस प्रकार है—

हिन्दू-स्वराज्य-संस्थापक श्रीशिवाजी महाराजके सद्‌गुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामी महाराजका तप:सामर्थ्य और उनका किया हुआ राष्ट्रकार्य अलौकिक है। सद्‌गुरुके द्वारा निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करके श्रीश्रीभवानी-कृपासे श्रीशिवाजी महाराजने कई किले जीत लिये। उस समय किलोंका बड़ा महत्त्व था। इसलिये जीते हुए किलोंको ठीक करवानेका एवं नये किलोंके निर्माणका कार्य सदा चलता रहता था और इस कार्यमें हजारों मजदूर सदा लगे रहते थे। सामनगढ़ नामक किलेका निर्माण हो रहा था, एक दिन उसका निरीक्षण करनेके लिये श्रीशिवाजी महाराज वहाँ गये। वहाँ बहुसंख्यक श्रमिकोंको कार्य करते देखकर उनके मनमें एक ऐसी अहंकार-भरी भावनाका अंकुर उत्पन्न हो आया कि 'मेरे कारण ही इतने जीवोंका उदर-निर्वाह चल रहा है।' इसी विचारमें वे तटपर घूम रहे थे। अन्तर्यामी सद्‌गुरु श्रीसमर्थ इस बातको जान गये और 'जय जय रघुबीर समर्थ' की रट लगाते हुए अकस्मात् न जाने कहाँसे वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही श्रीशिवाजी महाराजने आगे बढ़कर दण्डवत् प्रणाम किया और पूछा, 'सद्‌गुरुका शुभागमन कहाँसे हुआ?' हँसकर श्रीसमर्थ बोले—'शिवबा! मैंने सुना कि यहाँ तुम्हारा बहुत बड़ा कार्य चल रहा है, इच्छा हुई कि मैं भी जाकर देखूँ। इसीसे चला आया। वाह! वाह! शिवबा! इस स्थानका भाग्योदय और इतने जीवोंका पालन तुम्हारे ही कारण हो रहा है।' सद्‌गुरुके श्रीमुखसे यह सुनकर श्रीशिवाजी महाराजको अपनी धन्यता प्रतीत हुई और उन्होंने कहा—'यह सब कुछ सद्‌गुरुके आशीर्वादका फल है।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे किलेसे नीचे, जहाँ मार्ग-निर्माणका कार्य हो रहा था, आ पहुँचे। मार्गके बने हुए भागमें एक विशाल शिला अभी वैसी ही पड़ी थी। उसे देखकर सद्‌गुरुने पूछा—'यह शिला यहाँ बीचमें क्यों पड़ी है?' उत्तर मिला—'मार्गका निर्माण हो जानेपर इसे तोड़कर काममें ले लिया जायगा।' श्रीसद्‌गुरु बोले—'नहीं, नहीं, कामको हाथों-हाथ ही कर डालना चाहिये; अन्यथा जो काम पीछे रह जाता है, वह हो नहीं पाता। अभी कारीगरोंको बुलाओ और इसके बीचसे दो भाग करा दो।' तुरंत कारीगरोंको बुलाया गया और उस शिलाके समान दो टुकड़े कर दिये गये। सबोंने देखा कि शिलाके अंदर एक भागमें ऊखल-जितना गहरा एक गड्ढा था, जिसमें पर्याप्त जल भरा था और उसमें एक मेंढक बैठा हुआ था। उसे देखकर श्रीसद्‌गुरु बोले—'वाह, वाह, शिवबा, धन्य हो तुम! इस शिलाके अन्दर भी तुमने जल रखवाकर इस मेंढकके पोषणकी व्यवस्था कर रखी है।'

बस, पर्याप्त थे इतने शब्द श्रीशिव-छत्रपतिके लिये। उनके चित्तमें प्रकाश हुआ। उन्हें अपने अहंकारका पता लग गया और पता लगते ही 'इतने लोगोंके पेट मैं भरता हूँ—इस अभिमान-तिमिरका तुरंत नाश हो गया। उन्होंने तुरंत श्रीसद्‌गुरुके चरण पकड़ लिये और अपराधके लिये क्षमा-याचना की।

—श्रीयुत एम०एन० धारकर

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब उपलब्ध

कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹
1593	अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश	१३०	1162	एकादशीव्रतका माहात्म्य	२२
1189	संक्षिप्त गरुड़पुराण	१६०	1627	रुद्राष्टाध्यायी	३०
1183	संक्षिप्त नारदपुराण	२००	29	श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल, मोटा टाइप	१६०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	557	मत्स्यमहापुराण	२७०
1897	श्रीमद्देवीभागवत—सटीक, प्रथम खण्ड	२००	1728	सार्थ ज्ञानेश्वरी (कन्नड़)	२००
1898	श्रीमद्देवीभागवत—सटीक, द्वितीय खण्ड	२००	800	गीता-तत्त्व-विवेचनी (तमिल)	१८५
48	श्रीविष्णुपुराण—सटीक	१४०	1903	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण—(तमिल) II	२००
1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०	1776	श्रीमद्भागवतसुधासागर (मराठी)	२५०
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	1533	श्रीरामचरितमानस (सटीक) वि.सं., गुजराती	३००

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कुछ पत्रोंके संग्रह

कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹
353	लोक-परलोक-सुधार—६८ पत्रोंका संग्रह	२०
354	आनन्दका स्वरूप—६५ पत्रोंका संग्रह	२०
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—९३ पत्रोंका संग्रह	३०
356	शान्ति कैसे मिले?—९४ पत्रोंका संग्रह	२५
357	दु:ख क्यों होते हैं?—	२५

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ पत्रोंके संग्रह

कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹
277	उद्धार कैसे हो?—५१ पत्रोंका संग्रह	१०
278	सच्ची सलाह—८० पत्रोंका संग्रह	१२
280	साधनोपयोगी पत्र—७२ पत्रोंका संग्रह	१०
281	शिक्षाप्रद पत्र—७० पत्रोंका संग्रह	१५
282	पारमार्थिक पत्र—९१ पत्रोंका संग्रह	१५

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें एवं स्टेशन-स्टाल

निम्नलिखित सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर 'कल्याण' का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है।

इन्दौर-	जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग
ऋषिकेश-	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कटक-	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
कानपुर-	24/55, बिरहाना रोड
कोयम्बटूर-	गीताप्रेस मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स
कोलकाता-	गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड
गोरखपुर-	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
चेन्नई-	इलेक्ट्रो हाउस नं० 23, रामनाथन स्ट्रीट किल पोक
जलगाँव-	7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
दिल्ली-	2609, नयी सड़क
नागपुर-	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड
पटना-	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
बेंगलोर-	7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड
भीलवाड़ा-	जी 7, आकार टावर, सी ब्लाक, गान्धीनगर
मुम्बई-	282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)
राँची-	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
रायपुर-	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)
वाराणसी-	59/9, नीचीबाग
सूरत-	वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड
हरिद्वार-	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
हैदराबाद-	41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार

दिल्ली (प्लेटफार्म नं० 5-6); **नयी दिल्ली** (नं० 16); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० 4-5); **कोटा** [राजस्थान] (नं० 1); **बीकानेर** (नं० 1); **गोरखपुर** (नं० 1); **गोण्डा** (नं० 1); **कानपुर** (नं० 1); **झाँसी** (नं० 1); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **वाराणसी** (नं० 4-5); **मुगलसराय** (नं० 3-4); **हरिद्वार** (नं० 1); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० 1); **धनबाद** (नं० 2-3); **मुजफ्फरपुर** (नं० 1); **समस्तीपुर** (नं० 2); **छपरा** (नं० 1); **सीवान** (नं० 1); **हावड़ा** (नं० 5 तथा 18 दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० 1); **सियालदा मेन** (नं० 8); **आसनसोल** (नं० 5); **कटक** (नं० 1); **भुवनेश्वर** (नं० 1); **अहमदाबाद** (नं० 2-3); **राजकोट** (नं० 1); **जामनगर** (नं० 1); **भरुच** (नं० 4-5); **वडोदरा** (नं० 4-5); **इन्दौर** (नं० 5); **जबलपुर** (नं० 6); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० 1); **विजयवाड़ा** (नं० 6); **गुवाहाटी** (नं० 1); **खड़गपुर** (नं० 1-2); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० 1); **रायगढ़** (नं० 1); **बिलासपुर** (नं० 1) **बेंगलुरु** (नं० 1); **यशवन्तपुर** (नं० 6); **हुबली** (नं० 1-2); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० 1)।

फुटकर पुस्तक-दूकानें— **चूरू**-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**-मुनिकी रेती; **बेरहामपुर**- म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, **नडियाद** (गुजरात) संतराम मन्दिर।

प्र० ति० २०-४-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019
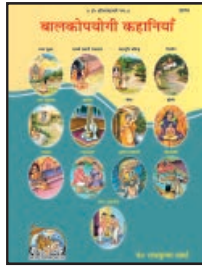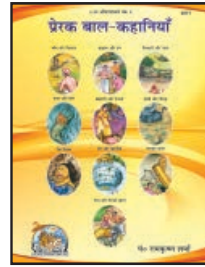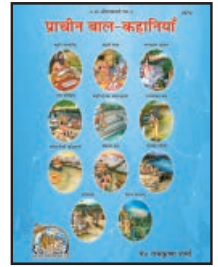
1. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/ 09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। अतिरिक्त नं० 9648916010 है जिसपर SMS एवं WatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

2. कल्याणके सदस्योंको मासिक अंक निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ २२० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अंकोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५